ताल्लपाक के कवियों की जीवनी
और
साहित्य का परिचय

लेखिका

डॉ. आर. सुमन लता

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

2025

TALLAPAKA KE KAVIYON KI JEEVANI AUR SAHITYA KA PARICHAY

By
Dr. R. Suman Latha

Editor
Dr. Akella Vibhishana Sarma
Special Officer
Publications Division

T.T.D. Religious Publications Series No. 1509
© All Rights Reserved

First Print : 2025

Copies : 250

Published by
Sri J. Syamala Rao, I.A.S.,
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati - 517 507.

DTP
Publications Division,
T.T.D, Tirupati.

Printed at
Tirumala Tirupati Devasthanams Press,
Tirupati - 517 507.

प्राक्कथन

‘‘वेंकटाद्रि समं स्थानं ब्रह्मांडे नास्ति किंचन
वेंकटेश समो देवो न भूतो न भविष्यति।।’’

अर्थात - वेंकटाद्रि के समान क्षेत्र इस ब्रह्मांड में नहीं है। वेंकटेश्वर जी के समान भगवान भी आज तक कहीं नहीं हुए हैं और आगे भी नहीं होंगे।

‘ताल्लपाक के कवियों की जीवनी और साहित्य का परिचय’ नामक इस पुस्तक को लेखिका डॉ. आर. सुमन लता जी ने श्रद्धा और समर्पण के साथ समर्पित है। यह एक ऐसी पुस्तक है, जो न केवल इतिहास को पुनर्जीवित करती है, बल्कि वर्तमान पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़ने का प्रयास करती है।

ताल्लपाक गाँव आंध्र प्रदेश के कडपा ज़िले में स्थित एक छोटा-सा स्थान है, जहाँ से शुरू होती है वहाँ एक ऐसी आध्यात्मिक यात्रा, जो केवल स्थानिक नहीं बल्कि सार्वकालिक है। यहाँ जन्म हुआ श्री ताल्लपाक अन्नमाचार्य को, जिन्हें तेलुगु साहित्य में ‘पदकविता पितामह’ कहा जाता है। इन्होंने भगवान वेंकटेश्वर की स्तुति में लगभग 32,000 पद लिखे थे। अन्नमाचार्य न केवल एक भक्त थे, बल्कि साहित्य, दर्शन, संगीत और समाज को एक नई दिशा देने वाले युगपुरुष भी थे।

अन्नमाचार्य के बाद उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य और पोते चिनतिरुमलाचार्य ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। पेदतिरुमलाचार्य ने न केवल भक्ति गीतों की रचना की, बल्कि अपने पिता द्वारा रचित पदों को व्यवस्थित किया और उन्हें मंदिर परंपरा का अंग बनाया।

चिनतिरुमलाचार्य ने अन्नमाचार्य की रचनाओं का संकलन और लिपिकरण किया, जिससे यह भव्य साहित्य आने वाली पीढ़ियों के लिए संरक्षित हो सका। इस प्रकार ताल्लपाक कवियों की यह त्रयी तीन दीपों के समान है, जो भक्ति रूपी मंदिर को शाश्वत प्रकाश प्रदान करती है। अन्नमाचार्य के साथ-साथ उनके वंश में कइयों ने उनका अनुकरण किया जिनमें ताल्लपाक तिम्मक्का, चिनतिरुवेंगनाथुडु, तिरुवेंगलप्पा आदि ने भी भगवान वेंकटेश्वर की भक्ति में संकीर्तनों, छंदों की रचना की।

इस पुस्तक का प्रत्येक पन्ना, प्रत्येक पद और प्रत्येक विश्लेषण इच्छा को जागृत करने की ओर लक्षित है। जब आप इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो मात्र इतिहास नहीं जानेंगे, बल्कि एक आंतरिक यात्रा का आरंभ करेंगे, जहाँ शब्दों में भक्ति है, भाव में संगीत है और पंक्तियों में मुक्ति की गूँज है।

सदा श्रीहरि की श्रीचरण सेवा में,

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्,
तिरुपति

भूमिका

भक्ति और मुक्ति के उपादान
संगीत और साहित्य के सोपान

भक्ति - भाव - राग और योग के संगम से परम पथ की ओर अग्रसर कराने वाले महान वाग्गेयकार हैं ''ताल्लपाक अन्नमाचार्य'' और उनके परिवार के कवि। वैष्णव भक्ति साहित्य में ही नहीं, वरन् संपूर्ण तेलुगु साहित्य में इन कवियों का मूर्धन्य स्थान है। एक ही परिवार के व्यक्ति, स्त्री तथा पुरुष ने मिलकर भाषा-साहित्य और संगीत का ही नहीं वरन् विशिष्टाद्वैत भक्ति तथा तिरुपति क्षेत्र की जो सेवा की थी, वह अन्यत्र देखने में दुर्लभ है।

कलियुग में भक्तों की पीड़ाओं को दूर करने के लिए तिरुपति क्षेत्र में भगवान वेंकटेश्वर के रूप में स्वयं विष्णु विराजमान हैं। इसीलिए इसे ''कलियुग का वैकुण्ठ'' कहा जाता है। विष्णु और लक्ष्मी के साक्षात् अवतार श्री वेंकटेश्वर और अलमेलमंगा की क्रीड़ास्थली तिरुपति क्षेत्र को ताल्लपाक के कवियों ने अपना तन, मन और धन के साथ-साथ संगीत और साहित्य को भी समर्पित कर दिया था।

पदकविता पितामह अन्नमाचार्य जी से लेकर, पाँच पीढ़ियों तक अर्थात् डेढ़ सौ वर्ष तक ताल्लपाक के कवि, अपने अनगिनत साहित्यिक पुष्पों के समर्पण से भगवान की सेवा करते ही रहे।

साहित्य का सृजन करना जितना महत्वपूर्ण है, उसे सुरक्षित रखने का प्रबंध करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जिसे ताल्लपाक के कवियों ने कर दिखाया। ताल्लपाक के कवियों ने अपनी रचनाओं को ताम्रपत्रों पर लिखवाया और कभी-कभी वैष्णव धर्म के प्रचार के

लिए दूर-दूर श्रीरंगम्, अहोबिलम् आदि क्षेत्रों तक भेजने के लिए किसी - किसी संकीर्तन की दो-दो, तीन-तीन प्रतियाँ लिखवायी थी। ''ताल्लपाक वारि अरा'' के नाम से आज भी हम मंदिर की चारदीवारी में अलमारी देख सकते हैं, जिसमें ताम्रपत्र सुरक्षित रखे गए थे। उसी भंडार को निकालकर इन कवियों की रचनाओं पर विद्वानों ने प्रकाश डाला है। वर्तमान में तिरुमल - तिरुपति देवस्थानम् के निरंतर प्रयासों के कारण ताल्लपाक कवियों का साहित्य विश्व भर में प्रचारित और प्रसारित हो रहा है। शक्कर की गुड़िया के समान सर्वत्र मिठास से भरी इन रचनाओं को देखकर लगता है कि किसी गंधर्व का जन्म इस पृथ्वी पर हुआ होगा। भक्ति के विविध रूपों से परिपूर्ण इनके साहित्य का - साहित्य प्रेमी इनके परम आनंद का रसास्वादन करते हैं, संगीतज्ञ स्वर-साधना करते हैं। संगीत मर्मज्ञ इनको सुनकर प्रफुल्लित होते हैं और भक्त पढ़-सुनकर परम आनंद को प्राप्त करते हैं।

आज तिरुपति क्षेत्र में पहुँचते ही एक ओर ''ॐ नमो वेंकटेशाय'' की धुन निरंतर सुनते रहते हैं, जो यात्रियों के मन को निर्मल रखने में सहायकारी है। अन्नमाचार्यजी के संकीर्तनों का गान होता ही रहता है। यहाँ की सेवायें देखकर मन पुलकित होता है। भक्ति भाव का संचार होता है। साधारण दैनिक जीवन से आगे बढ़ते हुए परमात्मा तक पहुँचने के लिए भक्तगण सदैव तत्पर रहते हैं, जिसके लिए ताल्लपाक के कवियों ने अपने संगीत और साहित्य के सोपानों से आरोहित होने के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।

- ॐ नमो वेंकटेशाय

विषय सूची

विषय	**पृष्ठ संख्या**
प्राक्कथन	vii
भूमिका	ix
अध्याय - 1	
तेलुगु संत साहित्य परंपरा - ताल्लपाक के कवि...	1 - 22
अध्याय - 2	
ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ ...	23-105
अध्याय - 3	
ताल्लपाक के कवियों की भक्ति साधना का स्थल - तिरुपति ...	106-115

अध्याय - 1

तेलुगु संत साहित्य परंपरा - ताल्लपाक के कवि

प्रस्तावनाः

भारत के इतिहास में मध्य युग का एक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इस युग में भारत की प्रजा को राजनैतिक, सामाजिक तथा अन्य कई क्षेत्रों में प्रबल संघर्ष करते हुए, अपने आपको सुस्थिर बनाना पड़ा। यहाँ तक आते-आते देश पर विदेशी आक्रमणकारी अपना शासन, धर्म तथा सामाजिक मान्यताओं को फैलाने और दृढ़ करने में सफल रहे। भारत की प्रजा ने अपनी आँखों से इन झंझामारुतों को देख, अनुभव किया और सहा और फिर भी सजग रहने की चेष्टा की। किन्तु अन्त में परिस्थितियों के कारण उन्हें सर झुकाना पड़ा। यह सब इतिहास के पन्ने बखान करते हैं। इन जटिल परिस्थितियों में ही सारे देश में भक्ति की लहरें उमड़ पड़ीं। जब तक देश में हिन्दू, बुद्ध, जैन, शैव, शक्ति, नाथ, सिद्ध आदि विभिन्न संप्रदाय पनपते रहे। राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल उनमें परिवर्तन और संशोधन भी होते रहे। किन्तु उत्तरी और दक्षिणी परम्पराओं के समन्वय का कोई अवसर न आ सका था। यह कार्य केवल विभिन्न आचार्य पुरुषों के द्वारा ही संभव हो सका। समन्वय की भावना शंकराचार्य ने आरम्भ की। किन्तु सिद्धान्तों की जटिलता के कारण उनका मत केवल विभिन्न आचार्य पुरुषों के द्वारा ही संभव हो सका। समन्वय की भावना शंकराचार्य ने आरम्भ की। किन्तु सिद्धान्तों की जटिलता के कारण उनका मत केवल विद्वानों तक ही सीमित रह सका। उनके पश्चात वैष्णव आचार्यों ने शास्त्रीय

पक्ष के साथ-साथ लौकिक पक्ष का भी निर्वाह किया। इस प्रकार से मध्य युग में भक्ति का आन्दोलन दक्षिण से आरम्भ होकर देश व्यापी हो गया। वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति के सुलभ मार्ग को मध्य युग के सन्तों ने तथा भक्तों ने जन सामान्य तक पहुँचाने का कार्यभार अपने कंधों पर लिया। भक्तिमार्ग की सहज सरलता के साथ-साथ जनता की भाषा में अभिव्यक्ति के कारण भक्ति अधिक से अधिक जनमानस को चुम्बक की भांति आकर्षित करने लगी। इसी संदर्भ में उल्लेखनीय विषय यह है, हिन्दी क्षेत्र में दाक्षिणात्य आचार्यों के द्वारा प्रवर्तित संप्रदायों के अतिरिक्त बंगाली - वैष्णव आचार्यों के द्वारा प्रवर्तित या प्रभावित संप्रदायों के अतिरिक्त आचार्यों और राधावल्लभ तथा हरिदासी संप्रदाय जैसे स्थानीय संप्रदाय भी सक्रिय थे। किन्तु दक्षिण में, विशेषकर तेलुगु प्रदेश पर रामानुजाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित श्रीसंप्रदाय की मान्यता अधिक रही। इस युग में जहाँ उत्तर भारत में हिन्दू और मुसलमानों के बीच संघर्ष चल रहे थे वहीं दक्षिण भारत में शैव और वैष्णवों के बीच संघर्ष का वातावरण था।

वैष्णव भक्ति अपनी सुलभता और सार्वजनीनता के कारण अधिक लोगों को आकृष्ट करने लगे। अतः दक्षिण के शैव राजा भी वैष्णव धर्म को अपनाने लगे। विधर्मियों के हाथों में शासन होने के कारण उत्तर भारत में सामाजिक परिस्थितियों के हाथों में शासन होने के कारण उत्तर भारत में सामाजिक परिस्थितियाँ भी विकट थीं। दक्षिण में राजा और प्रजा दोनों ही हिन्दू धर्मावलम्बी थे। अतः वर्णाश्रम धर्म का पुनरुद्धार होने लगा। फिर भी सम्पूर्ण देश में शायद वैष्णव भक्ति के आन्दोलन के ही कारण जात-पांत आदि का विरोध

भी दिखने लगा। धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित हो कर, तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल, वैष्णव भक्ति साहित्य का उदय हुआ। इसी भक्ति आन्दोलन के ही कारण इस युग में सभी भारतीय भाषाओं में विपुल भक्ति साहित्य का निर्माण हुआ। साहित्य में भक्ति की इस प्रधानता के ही कारण आचार्य शुक्ल जी जैसे विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इस काल को भक्ति काल की संज्ञा दी। तेलुगु साहित्य में तो भक्ति के आधार पर ही साहित्य का काल विभाजन हुआ है। इन सब बातों से हम यह तथ्य जान सकते हैं कि भक्ति साहित्य कितना महत्वपूर्ण रहा है।

जिस प्रकार से हिमालय से निकली गंगा सुदूर समुद्र में मिलने से पहले अपने आप में कई छोटे-मोटे प्रवाहों को आत्मसात् कर लेती है, उसी प्रकार से भारतीय साहित्य की धारा भी भागवत, रामायण, महाभारत आदि पौराणिक स्रोतों का आधार लेते हुए आज तक अविरल धारा के रूप में नये-नये मोड़ों के साथ संशोधित और परिवर्धित होकर चली आ रही है। इस प्रकार मध्य युग के साहित्य स्रष्टाओं का आधार मिला। उन्होंने पुराण पुरुष राम और कृष्ण की कथाओं के साथ-साथ आलवार भक्तों की प्रेम भावना, वैष्णव आचार्य पुरुषों को भक्ति भावना एवं दर्शन आदि को समेटते हुए स्वांतः सुखाय के साथ-साथ पर जन हिताय की भावना को भी लेकर अपनी रचनाएँ कीं। इस सामान्य पूर्व पीठिका के साथ इस लेख में हम तेलुगु भाषा के विशिष्ट सन्त कवि ताल्लपाक के कवियों का अध्ययन करेंगे।

तेलुगु भाषा के साहित्याकाश में कई कवि रूपी तारे चमकते हैं। उनमें अत्यन्त प्रकाश के साथ चमकने वाले तारे हैं - ताल्लपाक के

कवि अन्नमाचार्य, उनकी पत्नी, उनके पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र। इन कवियों की तुलना हम अरुंधती नक्षत्र सहित सप्तर्षि मंडल से कर सकते हैं। वैष्णव भक्ति साहित्य में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण तेलुगु साहित्य में इन कवियों का मूर्धन्य स्थान है। इनकी इस महानता का कारण यह है कि प्रायः एक ही परिवार के व्यक्ति, स्त्री तथा पुरुष ने मिलकर भाषा, साहित्य तथा संगीत का ही नहीं वरन् विशिष्टाद्वैत भक्ति तथा तिरुपति क्षेत्र की जो सेवा की थी, वह अन्यत्र देखने में दुर्लभ है। तिरुपति क्षेत्र में स्थित श्री वेंकटेश्वर (बालाजी) स्वामी के नाम से संसार के कोने-कोने के लोग परिचित हैं। ''कलौ वेंकट नायक!'' के अनुसार भगवान बालाजी को कलियुग में भक्तों की पीड़ाओं को दूर करने के लिए तिरुपति क्षेत्र में स्थित भगवान विष्णु का ही अवतार माना जाता है। सामान्य व्यक्ति के भी समझने योग्य, अत्यन्त मधुर तथा सरल भाषा को माध्यम बनाकर देशी रीतियों में संगीत तथा साहित्य को अपना साधन बनाते हुए ताल्लपाक के कवियों ने स्वामी बालाजी पर विभिन्न रचनाएँ की। ''एक ओर तिरुपति क्षेत्र के भगवान् बालाजी के अनुग्रह के कारण ताल्लपाक के कवियों ने नाम तथा यश कमाया था तो दूसरी ओर ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं के कारण ही वेंकटेश्वर स्वामी की प्रशंसा कोने-कोने में फैल गयी। अतः दोनों का यश अन्योन्याश्रित है।'' (ताल्लपाक कवुलु-विविध साहिती प्रक्रियलु-वे। आनंदमूर्ति, पुष्ठ 54) सामान्य जन मानस तक वैष्णव धर्म पहुँचाने का श्रेय इन्हीं कवियों को है।

वंशवृक्षः

''भारद्वाज गोत्र'' के ताल्लपाक के कवियों का वंशवृक्ष इस प्रकार है। अन्नमाचार्य के पौत्र चिन्नन्ना की रचनाएँ - 'अष्टमहिषी

कल्याण' तथा 'अन्नमाचार्य चरित्र' में इनका उल्लेख है। (आधार - वे. आनंदमूर्ति तथा एम. संगमेशम्)

ताल्लपाक अन्नमाचार्य

↓ ↓

तिम्मक्का (पत्नी) अक्कांबा (पत्नी)

↓ ↓

नरसिंह कवि

↓ ↓ ↓

पेदतिरुमलाचार्य तिरुमलम्मा नरसम्मा

↓ ↓

रेवणूरि वेंकटाचार्युडु

↓ ↓ ↓ ↓ ↓

चिनतिरुमलाचार्य अन्नमय्या पेदतिरुवेंगलनाथ चिन्नन्ना कोनेटिरायुडु

↓

तिरुवेंगलनाथ

(नरसिंह कवि के बारे में मतभेद है कि ये अन्नमाचार्य के पुत्र थे या नहीं)

अन्नमाचार्यः

अन्नमाचार्य के वंशज आंध्र प्रदेश के ''कड़पा'' जिले में स्थित 'ताल्लपाका' ग्राम के निवासी थे। ये विष्णु के भक्त थे। ''अन्नमाचार्य के पिता नारायण वेदाध्ययन सम्पन्न थे। माता लक्कमांबा अपने जन्म स्थान माडुपूरु के माधव स्वामी की भक्तिन थीं। इन्हीं पुण्य दम्पति के गर्भ में तिरुमल तिरुपति के भगवान (बालाजी) श्री वेंकटेश्वर की कृपा से, उन्हीं के खड्ग 'नंदक' के अंश से अन्नमाचार्य का जन्म

हुआ।'' (अन्नमाचार्य और सूरदास-मुट्नूरि संगमेशम्, पृष्ठ 4) इनकी जीवनी जानने के लिए आधार सामग्री है - अंतःसाक्ष्य तथा बहिर्साक्ष्य। वे हैं -

1. अन्नमाचार्य चरित्रमु, 2. अन्नमाचार्य वंशजों के दान 3. अन्नमाचार्य पदों के ताम्र पत्र 4. सामयिक तथा अर्वाचीन कवियों की रचनाओं में इनका उल्लेख 5. तेलुगु भाषा के आधुनिक कवि-वृत्त संग्रह तथा साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में संग्रहीत इनकी जीवनी तथा व्यक्तित्व। 6. अन्नमाचार्य तथा उनके पुत्र-पौत्रों के संकीर्तनों में प्राप्त अतःसाक्ष्य।

अन्नमाचार्य जी का जन्म श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी ने सन् 1424 (शकवर्ष 1346) निश्चित किया है। श्री अन्नमाचार्य जी के अध्यात्म तथा शृंगार संकीर्तनों के ताम्र पत्रों की अवतारिका के अनुसार अन्नमाचार्य जी का जन्म सन् 1424 (सं-1481) (शकवर्ष 1346) क्रोधि संवत्सर वैशाख शुद्ध पूर्णिमा के दिन विशाखा नक्षत्र में तथा स्वर्गवास सन् 1503 (संवत्-1560) (शकवर्ष-1425) दुंदुभि वर्ष फागुन कृष्ण द्वादशी को माना जाना चाहिए।

पांचवें वर्ष में ही अन्नमाचार्य जी का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथा वेदाध्ययन शुरु हो गया। बचपन से ही इन्हें श्री बालाजी के प्रति भक्ति थी। ''माँ की लोरियों में भी वेंकटेश्वर का नाम न लेने से वे अपना रोना बन्द नहीं करते थे। (अन्नमाचार्य चरित्रा-चिन्नना पृष्ठ 11) भगवान की कृपा से अपनी छोटी सी आयु में ही उन्होंने सभी विद्याओं को ग्रहण कर लिया था।'' उनका प्रत्येक वचन अमृत काव्य तथा गान, अमर गान लगने लगे थे।

''आडिन माटेल्ल अमृत काव्यमुग, पाडिन पाटेल्ल परम गानमुग...'' वे बचपन से ही बालाजी के नाम से संकीर्तन गाया करते थे। इस प्रकार के विशिष्ट व्यक्तित्व के अन्नमाचार्य का घर-गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों में मन न लगना कोई आश्चर्य की बात नहीं। एक दिन परिवार के सदस्यों की आज्ञा के अनुसार वे गौओं के लिए घास छीलने गये थे। वहाँ उनकी उंगली कटकर खून बहने लगा तो उनके मन में उसी क्षण ही विरक्ति आ गई। उसी मार्ग पर तिरुपति जाने वाले यात्रियों के साथ तिरुपति जा पहुँचे। अपने एक आध्यात्म संकीर्तन में घर के व्यक्तियों के बारे में वे लिखते हैं - ''अरे मेरा मन तो इनके प्रति मोह में है। भाई-बंधु, माता-पिता, ये सभी माया जाल में फँसाने वाले हैं। इनकी अपेक्षा श्री वेंकटेश्वर के प्रति प्रीति जगाना श्रेयस्कर है।'' (अन्नमाचार्य चरित्रा पीठिका से - प्रभाकर शास्त्री)

इस प्रकार अन्नमाचार्य अपनी आठ वर्ष की बाल्यावस्था में ही संसार से विरक्त होकर बिना किसी से कुछ कहे तिरुपति चले गये थे। पहाड़ पर चढ़ते समय वह नन्हा-सा बालक बेहोश हेकर गिर गया। उसी अवस्था में उसे ''अलमेल मंगा'' (श्री वेंकटेश्वर स्वामी की पत्नी पद्मावती।) के दिव्य दर्शन ही नहीं वरन् उनके हाथ का प्रसाद भी प्राप्त हुआ। होश आते ही बालक अन्नमाचार्य ने आशु रूप से देवी के नाम पर शतक (सौ पद्य) का गायन किया। तत्पश्चात् तिरुपति क्षेत्र के पुण्य तीर्थों में स्नान कर भगवान बालाजी के दर्शन करते समय स्वामी के नाम पर एक शतक आशु रूप में कह दिया। यह देखकर वहाँ के वैष्णवाचार्यों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। भगवान् ने स्वप्न में दर्शन देकर ''घनविष्णु'' नामक वैष्णव आचार्य को आदेश दिया कि बालक अन्नमय्या को वैष्णव धर्म की दीक्षा दो। उसी से

प्रेरित हो, घनविष्णु ने अन्नमय्या की भुजाओं पर शंख-चक्र के चिह्न बनाकर उन्हें वैष्णव बनाया तथा विषिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अन्तर्गत शरणागत धर्म का उपदेश दिया। अन्नमय्या प्रति दिन एक नया पद स्वामी के सम्मुख गाया करते थे। अन्नमाचार्य को सोलह वर्ष की आयु में स्वामी का साक्षात्कार हुआ।

कुछ दिनों के पश्चात् अन्नमाचार्य के परिवार के व्यक्ति उन्हें ढूँढ़ते हुए तिरुपति आ पहुँचे। गुरु की आज्ञा मानकर उनके साथ अन्नमय्या घर वापस गये तथा ''अक्कलम्मा'' और ''तिरुमलम्मा'' से उनका विवाह सम्पन्न हुआ। (अन्नमाचार्य चरित्र-चिन्नन्ना, पृष्ठ 29)

विवाह के पश्चात् अन्नमय्या ने अहोबिलमठ के संस्थापक श्री ''आदिवन् शठगोपयति'' से वेदांत द्राविड़ वेद का नियमपूर्वक अध्ययन किया। अपने सोलहवें वर्ष में भगवान् बालाजी का साक्षात्कार पाने के पश्चात् वे पदों की रचना कर गाया करते थे। कहा जाता है, उनके 32 हजार पद थे, जिनमें से आज केवल 14000 पद उपलब्ध हैं। वे कभी तिरुपति में और कभी अपने गाँव में रहते थे। किन्तु हर वर्ष तिरुपति के ब्रह्मोत्सव में भाग लेते थे। माना जाता है कि उन्होंने उन्हीं दिनों में वाल्मीकि रामायण के आधार पर अनेक संकीर्तन रचे थे। उनकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। इन्हें साक्षात् तुम्बुर या नारद या गंधर्व मानते थे। (अन्नमाचार्य चरित्र-चिन्नन्ना पृष्ठ 30)

ताल्लपाका के निकट ''टंगुटूर'' नामक नगर में ''सालुव नरसिंहराय'' नामक दंडनायक थे। उन्होंने अन्नमाचार्य को अपने गुरु मानकर, उनकी सलाह के अनुसार राज्य करने की इच्छा व्यक्त की।

अन्नमाचार्य के शुभ आशीश के ही कारण कुछ ही दिनों में वे दण्डनायक विजयनगर साम्राज्य के अधिपति बन गए। नरसिंहराज ने अन्नमाचार्य का कई प्रकार से राजसत्कार किया था।

इन्हीं नरसिंहराय राजा ने एक बार अन्नमय्या के शृंगार पद सुन मुग्ध होकर अपनी प्रशंसा में भी उसी प्रकार की रचनाएँ करने का आग्रह किया। यह कथा इस प्रकार कही जाती है। (अन्नमाचार्य चरित्रा - चिन्नन्ना पृष्ठ 36)

''यनुपंबेन द्रोणाचार्यु महिम गनियु
द्रौपदितंड्रि गर्विंचि नटुल -
नन्नमाचार्यु महत्व मंतयुनु
गन्नारगनियुनि गर्वांधुडगुचु''.....

द्रोण की महिमा जानते हुए भी राजा द्रुपद ने जिस प्रकार गर्व किया था, उसी प्रकार से अन्नमाचार्य की महिमा को जानते हुए भी अपनी प्रशंसा में पद गाने का आग्रह नरसिंहराय ने किया। तब अन्नमाचार्य ने उत्तर दिया - ''मेरी जिह्वा जो केवल भगवान् की लीलाओं का ही गान करती है, वह साधारण लौकिक शृंगार का गान कैसे कर सकती है?'' (वही)

(''हरि मुकुंदुनि गोनियाडु नाजिह्व)
निन्नु गोनियांडग नैरदैंतैन'')

किन्तु दुराग्रही तथा गर्वांध राजा ने अन्नमय्या को शृंखलाबद्ध कर दिया। अन्नमय्या ने अपनी इस दीन स्थिति का प्रभु से निवेदन किया -

''संकेल लिडुवैल जंपेडुवैल -
नंकिलि ऋण दात लागेडुवेल
वदलक वेंकटेश्वरुनि नाममे
विदिलिंप गति गानि वेरोंडुलेदु।''

1 (अन्नमाचार्य चरित्र - चिन्नन्ना पृष्ठ 36)

अर्थात् विपदाओं में भगवान् वनमाली के सिवा मेरी रक्षा करने वाले कौन हैं? किसी भी स्थिति में मैं वेंकटेश्वर का नाम कभी नहीं छोड़ूँगा। भक्त के इस करुण क्रंदन को सुन करुणासागर भगवान् ने उन्हें शृंखलाओं से मुक्त कर दिया। राजा स्वयं यह दृश्य देखकर आत्मग्लानि का अनुभव करने लगा। इस पश्चाताप में उसने अन्नमय्या से क्षमा की प्रार्थना की। पाप परिहार के लिए राजा ने उस महान् कवि को पालकी में बिठाकर स्वयं कंधा दिया। अन्नमय्या ने उन्हें समझाया कि किसी भक्त का अपमान करना (चाहे राजा ही क्यों न हो), किसी भी व्यक्ति के लिए उचित नहीं है। तुम्हें इस प्रकार का दुर्व्यवहार छोड़ना चाहिए। तब से राजा अन्नमाचार्य को साक्षात प्रभु का ही अवतार मानकर पूजा करने लगा।

राजा से आज्ञा लेकर अन्नमाचार्य तिरुपति गये। वहाँ ''शृंगार मंजरी'' की रचना कर भगवान् को समर्पित किया। ऐसा माना जाता है कि बालाजी भी उनके शृंगार संकीर्तन सुनकर पुनः यौवन प्राप्त कर उल्लास पाते थे। इस प्रकार अन्नमाचार्य ने अपना सारा जीवन संकीर्तन सेवा में ही बिताया। अन्त में बालाजी में ही समा गए।

अन्नमाचार्य की किर्ति चारों ओर फैल चुकी थी। उनकी महिमाओं के भी उल्लेख मिलते हैं। दूर-दूर से आकर लोग उनसे मिलते थे।

कर्नाटक के प्रसिद्ध संगीतकार पुरंदरदास भी उनसे मिले थे। पुरंदर को अन्नमय्या ने ''विट्ठल'' माना और उन्होंने अन्नमय्या को साक्षात् विष्णु। (अन्नमाचार्य चरित्र - चिन्नन्ना पृष्ठ 45)

अन्नमाचार्य की रचनाएँ संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं में उपलब्ध हैं। उनकी तेलुगु रचनाएँ हैं - आध्यात्म तथा शृंगार संकीर्तन, शृंगार मंजरी, द्विपद रामायण, वेंकटेश्वर शतक और वेंकटाचल महात्म्य। उनकी संस्कृत रचनाएँ हैं - शृंगार तथा आध्यात्म संकीर्तन और संकीर्तन लक्षण। उन्हें संगीत तथा साहित्य में समान प्रतिभा थी। ये ''हरि संकीर्तनाचार्य'', ''पद-कविता पितामह'', ''पंचमागम सार्वभौम'' की उपाधियों से विख्यात थे।

ताल्लपाक तिम्मक्काः

ये अन्नमय्या की प्रथम पत्नी थीं। दुर्भाग्यवश इनकी जीवनी के सम्बन्ध में कुछ सामग्री उपलब्ध नहीं है। अधिकांश विद्वान तिम्मक्का को ही तेलुगु भाषा की प्रथम कवयित्री मानते हैं। स्वर्गीय वेटूरि प्रभाकर शास्त्रीजी ने इनकी लघुकृति ''सुभद्रा कल्याणम्'' का संशोधन किया था। इसी कृति के आधार पर हम कह सकते हैं कि वे संगीत तथा साहित्य दोनों में चतुर थीं।

पेदतिरुमलाचार्यः

अन्नमय्या की द्विवितीय पत्नी अक्कम्मा के सुपुत्र पेदतिरुमलाचार्य का जन्म सन् 1458 में माना जाता है। पेदतिरुमलाचार्य भी अपने पिता की भांति महान् पंडित तथा कवि थे। भगवान् का अनुग्रह उन पर पूर्ण रूप से था और वे अपने नब्बे वर्ष के सुदीर्घ जीवन में पिता के ही समान् संकीर्तन सेवा करते रहे। इनकी रचनाओं में स्थान-स्थान

पर अपने समय की राजनैतिक, सामाजिक तथा अन्य घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। राजनैतिक क्षेत्र में विजय नगर राजाओं के ''सालुव'' तथा ''तुलुव'' वंशजों के बीच राज्याधिकार के लिए वैर चल रहा था। इसमें पेदतिरुमलाचार्य तथा उनके परिवार के सदस्यों ने सालुव नरसिंह राय - (अन्नमाचार्य के मित्र-जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है) के पुत्रों का पक्ष लिया। इन राजनैतिक उथल-पुथलों का प्रभाव उनके साधारण जीवन पर भी पड़ा। अन्नमाचार्य की मृत्यु के पश्चात् पेदतिरुमलाचार्य को अपना गाँव छोड़कर तिरुपति क्षेत्र जाना अनिवार्य हो गया था। उनके अग्रज भी श्रीरंगम् चले गये थे। (ताल्लपाक कवुलु - विविध साहिती प्रक्रियलु - वे. आनंदमूर्ति के आधार पर।) विजय नगर के किसी दुराग्रही राजा ने पेदतिरुमलाचार्य पर तलवार फेंककर मारने का प्रयत्न भी किया था। इसका उल्लेख उनके निम्न संकीर्तन में प्राप्त है -

''नाटिकि नाडु कोत्त नेटिकि नेडु कोत्त
नाटकपु दैवमवु नमो नमो।

... ...

वनजाक्ष नी कृपनु परशत्रुलेतिनट्टि
घन खड्गधार नाकु कस्तूरि बाटाय।''

(अन्नमाचार्य अध्यात्म संकीर्तनलु पृष्ठ 37)

(अर्थात् हे भगवान् तुम्हारी कृपा के ही कारण मुझ पर फेंकी गयी तलवार कमल की माला बन गयी।)

प्रायः इसी राजनीतिक वैषम्य के कारण विजयनगर के प्रसिद्ध राजा श्री कृष्ण देवराय (जो स्वयं कवि तथा पंडित थे और उनके

दरबार में ''अष्टदिग्गज'' के नाम से विख्यात आठ तेलुगु के प्रसिद्ध कवि थे) - ताल्लपाक के कवियों के प्रति उदास ही रहे। यह अत्यन्त दुर्भाग्य है कि राजनैतिक परिस्थितियों के कारण यह अलगाव बना ही रहा। अगर दोनों का मिलन होता तो सोने में सुगन्ध आ जाता था। कृष्णदेवराय के पश्चात् राजा अच्युत देवराय ताल्लपाक के कवियों को बहुत चाहते थे, अतः उनका उनके प्रति व्यवहार उदार था। (श्रीमद्भगवद् गीता-पेदतिरुमलाचार्य प्रस्तावना, पृष्ठ 9) अच्युत देवराय की इच्छा के अनुसार पेदतिरुमलाचार्य श्री बालाजी के प्रति संकीर्तन लिखने का उल्लेख शिला लेखों में है। राजा तथा कवि, दोनों के कारण तिरुपति क्षेत्र तथा बालाजी दोनों को अखण्ड वैभव प्राप्त हुआ।

पेदतिरुमलाचार्य की महिमाओं के सम्बन्ध में भी कुछ उल्लेख हाल ही में प्राप्त हुए हैं। उनके अनुसार एक बार तिरुमल की मूर्तियों को कुछ चोर चुरा कर ले गए। कुछ दूर जाने के पश्चात् उन्हें कुछ दिखाई नहीं देने लगा। उन्हें भगवान बालाजी ने आदेश दिया कि इन मूर्तियों को अगर पेदतिरुमलाचार्य को पहुँचा दोगे तो तुम्हारी आँखें ठीक हो जायेंगी! चोरों ने तिरुमलाचार्य का पता लगाया और मूर्ति उन्हें सौंपी। क्षमा मांगी और स्वस्थ होकर चले गए। पेदतिरुमलाचार्य जी ने इन मूर्तियों को तिरुमल वापस भेजना चाहा। किन्तु भगवान ने प्रधान पुजारी के स्वप्न में आकर यह कहा कि मैं पेदतिरुमलाचार्य जी के पास ही रहना चाहता हूँ। अतः मुझे तिरुमल लाने की आवश्यकता नहीं। यह जानकर प्रभु की सेवा के लिए अच्युत देवराय ने कई गांव, जागीर आदि दान में दिये। विजय नगर साम्राज्य के अन्त तक कई गांव ताल्लपाक के कवियों के आधीन ही थे। तिरुमलाचार्य के महान्

दानी होने के भी उल्लेख शिला-लेखों में हैं। कम से कम उन्होंने दान में मिले 27 गांवों को भगवान को समर्पित कर दिया था। कभी-कभी गाँवों को खरीदकर भी उन्होंने स्वामी को समर्पित किए। अपना धन व्यय कर तिरुपति, विजय नगर, कांची आदि प्रदेशों में कई घरों के मरम्मत का कार्य, नए-नए मण्डप आदि का निर्माण करवाने के भी उल्लेख हैं।

ताम्र पत्रों से पता चलता है कि अन्नमाचार्य ने अपने पुत्र पेद्दतिरुमलाचार्य को आदेश दिया था कि मेरी मृत्यु के पश्चात् तुम भी प्रतिदिन एक नया संकीर्तन पुष्प समर्पित कर, भगवान वेंकटेश्वर की अर्चना करना। पेद्दतिरुमलाचार्य ने इसे निभाया भी।

शृंगार तथा अध्यात्म संकीर्तनों के अलावा इनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं -

1. सुप्रभात स्तवमु, 2. वैराग्य वचन मालिका गीतमुलु, 3. शृंगारदंडकमु, 4. चक्रवाल मंजरों 5. शृंगार वृत्त पद्याल शतकमु, 6. वेंकटेश्वर उदाहरणमु, 7. नीतिशतकमु 8. सुदर्शन रगडा, 9. रेफरकार निर्णयमु, 10. भगवद्गीता वचनमु, 11. द्विपद हरिवंशमु।

उन्हें तेलुगु साहित्य की सभी शैलियों में रचना करने की अद्भुत क्षमता थी। इनका साहित्यिक क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। ये तमिल भाषा में भी कविता लिख सकते थे। इसके उल्लेख तिरुपति क्षेत्र के शिलालेखों मे प्राप्त होते हैं। ये ''पद कविता'' लिखने में प्रसिद्ध थे। उन्हें ''श्रीमद् वेद मार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य, श्री रामानुज सिद्धान्त स्थापनाचार्य, वेदान्ताचार्य, कवितार्किक केसरि, शरणागत वज्रपंजर'' आदि उपाधियों से विभूषित किया गया था। एक साथ कवि, गायक,

पंडित, बहुभाषाविद् होना कोई सामान्य बात नहीं। वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए साहित्य को एक साधन बना कर विभिन्न प्रकार की नवीन शैलियों की खोज करते हुए, पेदतिरुमलाचार्य तत्कालीन साहित्य साम्राज्य के सम्राट बने थे। (ताल्लपाक कवुलु-विविध साहिती प्रक्रियलु-वे. आनन्द मूर्ति पृष्ठ 119)

इन सबके अलावा इनकी और एक महान विशेषता यह है कि उन्होंने अपने कई मित्रों तथा शिष्यों की मंडली के साथ ''संकीर्तन भंडार'' की स्थापना की। इसमें अपने पिता अन्नमाचार्य के तथा अपनी रचनाओं को ताम्रपत्रों पर लिखवा कर तत्कालीन साहित्य को शाश्वत किया और आगामी पीढ़ियों तक पहुँचाने का महान कार्य किया। कैफियतों में यह लिखा गया है कि पेदतिरुमलाचार्य जी ने इस स्थान पर दीप, धूप, नैवेद्य आदि की व्यवस्था भी करवायी। इन कीर्तनों को गान करने के लिए वेतन देकर कुछ व्यक्तियों की नियुक्ति की। वहाँ उपस्थित श्रोताओं को भी गुलाबजल, चन्दन, पान आदि से आदर-सत्कार किया जाता था। ग्रीष्म ऋतु में तो यहाँ संकीर्तन 'अरलुप्पाडु' होती थी। जिसका अर्थ है दया की याचना करते हुए गानों का गायन करने का उत्सव। (श्रीमद् भगवद् गीता-पेद तिरुमलाचार्य के आधार पर, पृष्ठ 113) भगवान को नयी-नयी कई सेवाओं का भी आयोजन इन्होंने करवाया।

ललाट पर श्री वैष्णवों के अनुसार तिलक, गले में तुलसी माला, दोनों भुजाओं पर शंख, चक्र के चिह्न और सदा कृष्ण गान-ऐसी मनोहर मूर्ति थी उनकी। आज भी तिरुपति क्षेत्र में संकीर्तन भंडार के दोनों ओर अन्नमाचार्य तथा पेदतिरुमलाचार्य की मूर्तियाँ हम देख

सकते हैं। प्रतिभा शाली पिता के प्रतिभावान पुत्र थे। सन् 1554 तक ये जीवित थे। नब्बे वर्ष के सुदीर्घ जीवन में इन्होने ऐश्वर्य का सदुपयोग किया। राजा के आदर के पात्र होते हुए भी कभी भी मानवों का यशगान नहीं किया। चतुर्विध पुरुषार्थों को समान रूप से भोगा। भगवान का अनुग्रह, राजा का आदर और लोक सम्मान-इन तीनों को समान रूप से इन्होंने प्राप्त किया था। अतः इन्हें हम पूर्ण पुरुष कह सकते हैं। महाकवि और पंडित तो थे ही।

चिनतिरुमलाचार्यः

ये अन्नमाचार्य के पौत्र तथा पेदतिरुमलाचार्य के प्रथम पुत्र थे। इनका जीवन काल सन् 1562 तक माना जाता है। पिता तथा पितामह के ही अनुसार इन्होंने भी शृंगार तथा आध्यात्म संकीर्तनों की रचना की थी। ये संस्कृत तथा तेलुगु भाषा के महान् कवि तथा पंडित थे। ''अष्ट भाषा चक्रवर्ती'' की उपाधि इनकी विद्वत्ता का परिचायक है। माना जाता है कि इन्हें ब्रह्मोपदेश स्वयं पितामह अन्नमय्या से प्राप्त हुआ था। अतः इन्होंने अपने आपको धन्य मानते हुए गुरु (अन्नमाचार्य) के प्रति भक्ति तथा श्रद्धा पूर्वक उनकी प्रशंसा में कई संकीर्तन लिखे हैं। जैसेः

वेलमै श्रीहरि गने वैरवानतिच्चितिवि।'' (अध्यात्म संकीर्तन (वा.16) पद 39)

ये मानते हैं कि अपने पितामह के ही कारण अपने वंशजों को वैष्णव बन कर मुक्ति मार्ग पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्होंने भी लौकिक सम्पति का मोह तथा मनुष्यों की (राजाओं) सेवा करने वालों की निन्दा की है तथा उन्हें नीच माना।

इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं -

1. शृंगार संकीर्तन, 2. अध्यात्म संकीर्तन, 3. अष्टभाषा दंडकम्, 4. संकीर्तन लक्षण।

इन्होंने भगवान बालाजी की तथा तिरुपति क्षेत्र के अन्य मंदिरों का भी जीर्णोद्धार करवाया तथा नियमित सेवा की योजना आरंभ की। मंगापुरम में आलवार, भाष्यकार तथा देशिकों के साथ अपने पितामह की भी मूर्ति की प्रतिष्ठा इन्होंने करवायी थी। आज भी इनके चिह्न हमें मिलते हैं। ''शिलालेख तथा इनके संकीर्तनों से यह ज्ञात होता है कि चिनतिरुमलाचार्य ने वैष्णव धर्म तथा संकीर्तनों के प्रचार तथा प्रसार के लिए चित्तूर, अनंतपूर, कड़पा, कर्नूल, नेल्लूर, गुंटूर आदि प्रदेशों का भ्रमण किया था। (ताल्लपाक कवुलु कृतुलु-विविध साहिती प्रक्रियलु-वे. आनन्दमूर्ति पृष्ठ 121)''

चिनतिरुवेंगलनाथुडुः पेदतिरुमलाचार्य के चतुर्थ पुत्र चिनतिरुवेंगलनाथ तेलुगु साहित्य में ''चिन्नन्ना'' के नाम से विख्यात हैं। ''चिन्नन्ना द्विपद केरुगुनु'' 1500 तथा गोलोकवास सन् 1558 माना जाता है। तत्कालीन विजयनगर साम्राज्य के राजा सदाशिव राय ने चिन्नन्ना को कई प्रकार से सम्मानित किया था। राजा द्वारा दी गयी सारी भेंटों को कवि ने प्रभु बालाजी को ही समर्पित कर दिया था। चिन्नन्ना को एक दिन में प्रायः एक हजार द्विपद छन्दों में रचना कर सकने की अपूर्व क्षमता थी। इन्होंने अपनी सारी रचनाओं को द्विपद छन्द में ही प्रस्तुत किया। ये रचनायें हैं - 1. अन्नमाचार्य चरित्रमु 2. अष्ट महिषी कल्याणमु 3. उषा कल्याणमु 4. परमयोगी विलासमु। इस प्रकार इन्होंने द्विपद छन्द (जिसे पंडित लोग लोक छन्द की दृष्टि

से देखते थे) को अपनी शिष्ट रचनाओं के माध्यम से एक उन्नत स्थान दिया। इनकी कविता, कस्तूरी, कपूर तथा सुगन्ध पुष्पों की भांति सुगंध फैलाती है। (वेटूरि आनंदमूर्ति)

इनकी रचना ''अन्नमाचार्य चरित्र'' का ऐतिहासिक महत्व है। इस के आधार पर मूल पुरुष अन्नमाचार्य जी की जीवनी आज हमें प्राप्त हो रही है।

काव्य तथा कविता क्षेत्र के साथ-साथ धर्म प्रचार में भी इन्होंने बहुत परिश्रम किया था। संगीत का भी इन्हें विशेष ज्ञान था। आज के ताल्लपाक के वंशज अपने को इस चिन्नन्ना के वंश के ही मानते हैं। (श्री वे. आनन्द मूर्ति के आधार पर, पृष्ठ 125) इस प्रकार चिन्नन्ना विभिन्न दृष्टियों से प्रसिद्ध व्यक्ति हैं।

तिरुवेंगलप्पाः चिनतिरमिलाचार्य के पुत्र, पेदतिरुमलाचार्य के पौत्र तथा अन्नमाचार्य के प्रपौत्र तिरुवेंगलप्पा का समय सन् 1515 से सन् 1565 तक माना जाता है। ये उच्चकोटि के पंडित थे। रसवत् कविता लिखना इनकी विशेषता मानी जाती है। इन्होंने संस्कृत तथा तेलुगु, दोनों भाषाओं में कवित्व तथा लक्षण ग्रंथों की रचना की।

इनकी रचनायें 1. अमरुक काव्य (अनुवाद) 2. बाल प्रवौधिका- अमरूक की तेलुगु व्याख्या 3. सुधनिधि-काव्य प्रकाश (मम्मट) की व्याख्या 4. रामचन्द्रोपाख्यान काव्य।

ये भी तिरुपति क्षेत्र के गोविन्दराज स्वामी तथा कांची क्षेत्र के भगवान को जमीन आदि दे कर विशेष उत्सवों का संचालन करवाते थे।

अंत में हम कह सकते हैं कि ताल्लपाक के कवियों का तेलुगु साहित्य में अपना विलक्षण स्थान है। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अन्नमाचार्य से लेकर पाँच पीढ़ियों तक करीब-करीब डेढ़ सौ वर्ष तक, ये अपने अनगिनत साहित्यिक पुष्पों से भगवान बालाजी की सेवा करते ही रहे। राजाश्रय से दूर रहने पर भी इनकी प्रतिभा के कारण स्वयं राजाओं ने इनका आदर-सत्कार किया। राजाओं से प्राप्त अपार धन सम्पति को अपने स्वार्थ के लिए उपयोग न कर स्वामी को ही समर्पित करते रहे। पूरे वंश ने स्वामी की सेवा में ही जीवन बिता कर अपने आपको धन्य कर लिया।

* * *

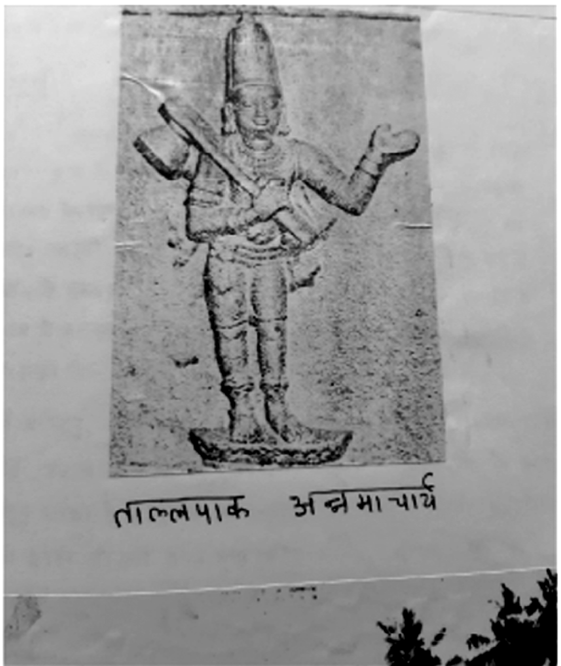

ताल्लपाक अन्नमाचार्य

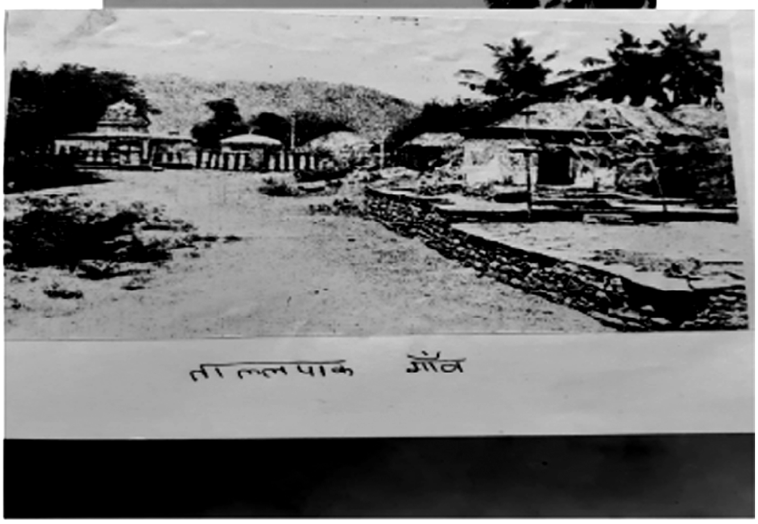

ताल्लपाक गाँव

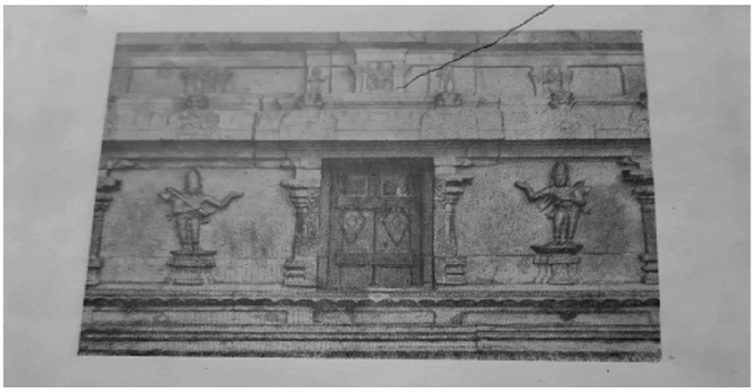

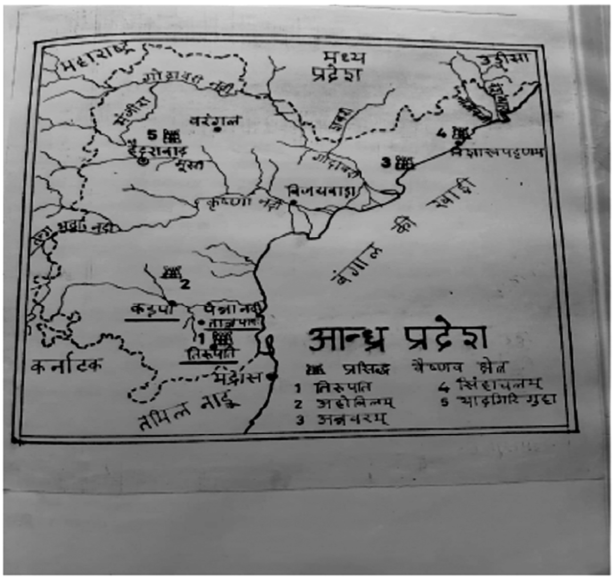
महाराष्ट्र
मध्य प्रदेश
उड़ीसा
गोदावरी नदी
वरंगल
हैदराबाद
कृष्णा नदी
विजयवाड़ा
बंगाल की खाड़ी
कडपा
तिरुपति
मद्रास
कर्नाटक
तमिल नाडु
आन्ध्र प्रदेश
प्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र
1 तिरुपति
2 अहोबिलम्
3 अन्नवरम्
4 सिंहाचलम्

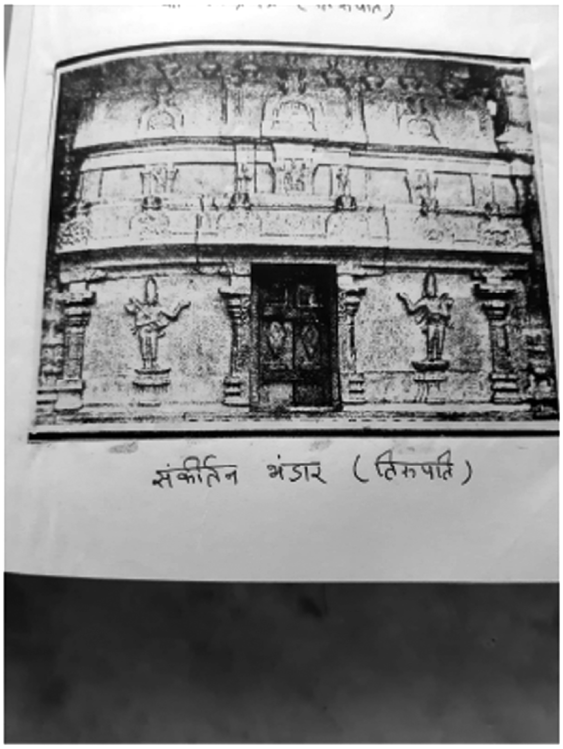

संकीर्तन भंडार (तिरुपति)

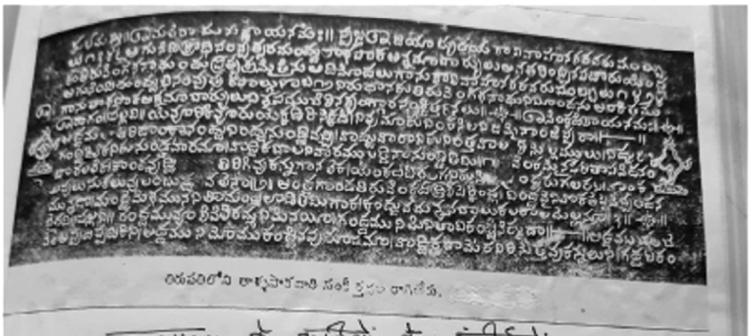

ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तनों का ताम्रपत्र (तिरुपति)

अध्याय - 2

ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ

प्रस्तावनाः

अध्ययन से पता चलता है कि तेलुगु साहित्य का आरम्भ कवित्रय (नन्नया, तिक्कना और एर्रा प्रगड़ा) का धार्मिक ग्रंथ ''आंध्र महाभारत'' से हुआ था। अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि तेलुगु साहित्य के आरम्भिक काल में आंध्र प्रदेश पर शैव तथा वैष्णव धर्मों का प्रभाव अधिक मात्रा में था। अतः दोनों धर्मावलम्बी अपने धर्म के प्रचार के लिए ''जानुतेनुगु'' (अर्थात् बोलचाल की भाषा) को अपना कर उसमें नये-नये प्रयोग करते रहे। फलस्वरूप आरम्भिक काल से ही तेलुगु भाषा में उत्तम ग्रंथों का निर्माण हुआ। अपने धर्म के प्रचार तथा प्रसार के लिए दोनों धर्मावलम्बियों ने साहित्य के साथ-साथ संगीत का भी सहारा लिया।

ताल्लपाक के कवियों ने भी वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए तेलुगु साहित्य को वैष्णव भक्ति से भर दिया। भगवान वेंकटेश्वर के महान भक्त कवियों का यह परिवार उस धर्म की दिव्य अनुभूति को सारे विश्व में फैलाने का व्रत ले कर साहित्य का सृजन किया। उनका साहित्य व्यापक होने के साथ-साथ अत्यन्त गहरा भी है। इसका कारण यह है कि उन्होंने तेलुगु साहित्य के किसी भी शैली अथवा छन्द को छोड़ा नहीं। चूंकि उन्होंने तेलुगु के सभी काव्य रूपों में रचनाएँ की, उनके साहित्य के विशेष अध्ययन के आधार के लिए

तेलुगु के विभिन्न काव्य रूपों को ही लेना तर्क संगत होगा। उनकी अधिकांश रचनाएँ मुक्तक तथा गेय पद शैलियों में ही लिखी गयी हैं। ''मुक्तक'' काव्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

मुक्तक काव्य

पद	शतक	मंजरी काव्य	अन्दपरक काव्य

तेलुगु भाषा के छन्द परक काव्यों का भी विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

धन्य परक काव्य

पद्यात्मक			**गद्यात्मक**	
द्विपद तथा मंजरी दिव्पद	रगडुलु	उदाहरणमुलु	दंडकमुलु	वचनमुलु

3.2.1 ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं का वर्गीकरणः

ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ भी इसी आधार पर वर्गीकृत की जा सकती हैं। यथा -

(1) संकीर्तन (आ) द्विपद (इ) शतक (ई) दंडक (उ) रगड़ (ऊ) उदाहरण तथा (ए) वचन संकीर्तन। उन्होंने लक्षण ग्रंथ, स्थल माहात्म्य तथा व्याख्याएँ भी लिखीं।

प्रस्तुत अध्याय में इन काव्य रूपों तथा शैलियों के परिचय के परिप्रेक्ष्य में ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं का विशेष विवरण दिया जा रहा है।

3.2.2 संकीर्तन-वर्गीकरणः

प्रस्तावनाः इस गीत शैली का उद्भव कब हुआ यह निर्णय करना अत्यन्त दुष्कर है।..... वास्तव में यह कोई नयी शैली नहीं थी, अपितु भारतीय साहित्य में युग-युगान्तर से चली आती हुई एक परम्परा थी विशेष विभूतियों द्वारा समय-समय पर परिवर्तन, परिवर्द्धन होते रहे हैं।

स्वयं अन्नमाचार्य जी के शब्दों में सत्युग में ध्यान, त्रेतायुग में यज्ञ, द्वापर में पूजा करने से जो फल अथवा मुक्ति मनुष्य प्राप्त कर सकता था वह इस कलियुग में भगवान के संकीर्तन मात्र से ही मिल जाती है। इसीलिए वैष्णव धर्म में संकीर्तन सेवा का विशेष स्थान है। 'संकीर्तन' शब्द की व्युत्पत्ति सम्यक कीर्तनम् से हुई है। कीर्तन का अर्थ है - किसी की विशेषताओं का गुणगान करना अथवा वर्णन करना। ''अगोचर दिव्य शक्ति, अर्थात् भगवान के गुणों का गान करना कीर्तन कहलाता है जिसमें भक्त हृदय को भगवान के पाद पद्मों तक ले जाने की अपूर्व क्षमता होती है।'' कीर्तन का सम्बन्ध अपने इष्ट के नाम गुण, रूप और लीला से है। जो गाया जाता है, उसे गेय या पद या गीत कहते हैं। अमरकोष के अनुसार-पदों में भक्त के हृदय को भगवान के पास ले जाने की अपूर्व शक्ति है। प्राचीन काल में पद तथा संकीर्तन पर्यायवाची शब्द थे।

संकीर्तनों की यह परम्परा संस्कृत से आते हुए सभी भारतीय भाषाओं में अत्यन्त लोकप्रिय बन गयी। जयदेव तथा लीला शुक के कृष्ण कर्णामृत के पद आज भी बड़े चाव से गाये जाते हैं। उनका अभिनय भी किया जाता है। यद्यपि तेलुगु में पाल्कुरिकि सोमनाथ

जैसे वीरशैव कवियों के द्वारा संकीर्तन रचना करने का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनकी रचनाएँ आज उपलब्ध नहीं हैं। सोमनाथ के तुम्मेद पद, प्रभात पद, आनन्द पद, शंकर और निवालिपद तथा वेन्नलपद आदि लोक साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। नरसिंह के भक्त कवि कृष्णमाचार्य तेलुगु के प्रथम वचन गीतकार थे। मधुर भक्ति के क्षेत्र में ये आलावारों से प्रभावित थे। इनकी प्रशंसा स्वयं ताल्लपाक के कवियों ने की है। इनसे ही प्रभावित होकर अन्नमाचार्य ने लोक शैलियों को अपनाया।

प्राचीनकाल में पद का अर्थ संगीत तथा साहित्य के सम्मेलन से उत्पन्न रचनाओं से था। ''लक्षणकारों ने इसके वाक्'' को साहित्य तथा ''गेय'' को संगीत की संज्ञा दी है। इस प्रकार के संगीत तथा साहित्य अर्थात् वाक्य और गेय-दोनों को मिला कर रचना करने की क्षमता जिनमें होती थी, उन्हें ''वाग्गेयकार कहते थे।'' आलोच्य कवियों में अन्नमाचार्य, पेदतिरुमलाचार्य तथा चिनतिरुमलाचार्य - ये तीनों महान् वाग्गेयकार थे। इन तीनों ने हजारों की संख्या में संकीर्तन लिखे। ताल्लपाक के कवियों को ही तेलुगु के सर्वप्रथम वाग्गेयकार होने का श्रेय प्राप्त है। ''इसका कारण है वीर शैव कवियों के पदों की अनुपलब्धि तथा कृष्णमाचार्य के संकीर्तनों में, ''टेक का अभाव, गद्यात्मकता, संगीत सरणियों और लय के परिष्कृत रूप का अभाव'' आदि का होना है। ताल्लपाक के कवियों ने सकीर्तनों की रचना से ही संतृप्त न हो कर उनके लक्षण भी स्पष्ट किये। उनकी इस अपूर्ण क्षमता के ही कारण इस वंश के मूल पुरुष अन्नमाचार्य को ''पदकविता पितामह'' की उपाधि प्राप्त हुई।

संकीर्तन को हम आत्माश्रयी (Subjective) साहित्य के अंतर्गत रख सकते हैं। संस्कृत लक्षण ग्रंथों में इन वाग्गेयकारों के लक्षण दिये हैं। यथा - 1. सुशब्द तथा अपशब्द का ज्ञान 2. व्याकरण का परिज्ञान तथा प्रामाणिक शब्दों के प्रयोग का विशेष ज्ञान 3. मार्ग तथा देशी छन्दों का ज्ञान 4. रस तथा भाव का ज्ञान 5. देशकाल वातावरण का ज्ञान 6. संस्कृत, प्राकृत तथा विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का ज्ञान 7. कला तथा शास्त्रों में कुशलता 8. नृत्य गीत तथा वाद्यों में प्रवीणता 9. गात्र माधुर्य 10. लय तथा ताल का ज्ञान 11. गाने की विभिन्न पद्धतियों की जानकारी 12. प्रतिभा 13. लालित्य पूर्ण संगीत रचना करने की क्षमता के साथ-साथ 14. देशी रागों का विशेष ज्ञान होना आवश्यक माना गया है। इनके अलावा क्रोध तथा द्वेष का त्याग, सुहृदयता की भावना रखना इत्यादि भी वाग्गेयकारों के लिए आवश्यक लक्षण माने गये हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ताल्लपाक के कवियों में ये सभी लक्षण विद्यामान थे। अन्नमाचार्य, पेदतिरुमलाचार्य तथा चिनतिरुमलाचार्य - इन तीनों कवियों के संकीर्तन आज अप्राप्य हैं। चिन्नन्ना ने अपने अन्नमाचार्य चरित्र में लिखा है कि उन्होंने भगवान के प्रति बत्तीस हजार कीर्तन लिखे हैं। किन्तु आज केवल 14358 ही प्राप्य हैं। पेदतिरुमलाचार्य के 1062 तथा चिन-तिरुमालाचार्य के केवल 120 संकीर्तन ही प्राप्त हैं।

अन्नमाचार्य ने संकीर्तनों की रचना अपने सोलहवें वर्ष से ही आरम्भ की थी। यह संकीर्तन सेवा मृत्यु पर्यन्त करते रहे। कलियुग में भव-सागर पार करने के लिए इस उपाय का सहारा लेने के ही कारण माना जाता है कि अन्नमाचार्य को तीन पीढ़ियों तक देव साक्षात्कार और सात पीढ़ियों तक मोक्षाधिकार का वरदान स्वयं श्री बालाजी से

प्राप्त हुआ था। अन्नमाचार्य के पश्चात् उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य तथा पौत्र चिनतिरुमलाचार्य ने भी इसी सेवा में अपने आपको धन्य किया।

संकीर्तन भंडारः उनकी संकीर्तन सेवा के संदर्भ में ही विशेष उल्लेखनीय विषय यह है कि उन्होंने अपनी समस्त रचनाओं को संकीर्तन भंडार में सुरक्षित रखा। प्रायः अन्नमाचार्य स्वयं अपनी रचनाओं को ताल पत्रों पर लिखा करते थे और उन्हें सुरक्षित रखते थे।

उनका एक संकीर्तन इस प्रकार है कि - हे भगवान तुम्हारे पाद पद्मों की इन संकीर्तन रूपी पुष्पों से पूजा कर रहा हूँ। केवल एक ही संकीर्तन हमारा उद्धार करने के लिए अधिक है। बाकी उसी संकीर्तन भंडार में ही पड़े रहने दो।

बाद में उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य ने इन संकीर्तनों को ताम्र पत्रों पर लिखवाया था। कभी-कभी वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए दूर-दूर श्रीरंगम्, अहोबिलम् आदि वैष्णव क्षेत्रों तक भेजने के लिए किसी संकीर्तन् की दो-दो, तीन-तीन प्रतियाँ भी लिखवायी गयी थीं। आज भी तिरुपति क्षेत्र के मंदिर की चहार दीवारी में ताल्लपाक कवियों की एक अलमारी है। उसके दोनों ओर अन्नमय्या तथा पेदतुरुमलाचार्य की मूर्तियाँ हैं। उस अलमारी में ताल्लपाक कवियों की सभी रचनाओं के ताम्रपत्र रखे हुए हैं। साथ-साथ मंदिर के दीवारों पर स्वर सहित लिखवाया था।

ताल्लपाक कवि प्रकांड पंडित थे। वे संस्कृत व देशी तेलुगु दोनों में संकीर्तन लिखने में कुशल थे। ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तन आध्यात्म और शृंगार नामक दो प्रकार के हैं। अन्नमाचार्य के पौत्र

वन्नन्ना के अनुसार अन्नमाचार्य ने पहले शृंगार एवं पश्चात् आध्यात्म संकीर्तनों की रचना की थी। शिला लेखों से यह जानकारी होती है कि पेदतिरुमलाचार्य एवं चिनतिरुमलाचार्य ने पहले आध्यात्म संकीर्तनों की रचना की थी। इन संकीर्तनों को विषय-वस्तु के अनुसार, गाने की विधि के अनुसार एवं भाषा के अनुसार निम्न प्रकार से वर्गीकरण कर सकते हैं।

गायन के आधार पर वर्गीकरण संकीर्तन रचनाएँ

व्यक्तिगत गान	**संवाद गान**	**बृन्दगान**	**प्रक्रियागान**
स्त्रियों से गाये जाने वाले	स्त्रियों का संवाद	स्त्रियों से गाये जाने वाले	स्त्रियों से गाये जाने वाले
पुरुषों से गाये जाने वाले	पुरुषों का संवाद	पुरुषों से गाये जाने वाले	पुरुषों से गाये जाने वाले
	पुरुषःस्त्री संवाद	स्त्री-पुरुष मिलकर गाने योग्य	स्त्री-पुरुष मिलकर गाने योग्य

भाषा के आधार पर वर्गीकरण संकीर्तन रचनाएँ

तेलुगु भाषा के संकीर्तन	संस्कृत भाषा के संकीर्तन

ताल्लपाक के कवियों के प्रत्येक पद में पल्लवि (टेक) और अनुपल्लवि दोनों प्राप्त होते हैं। उनके संकीर्तनों में जैसा कि ऊपर के वर्गीकरण में दिया गया है, लोकगीतों की सभी शैलियाँ मिलती हैं।

(1) अन्नमाचार्य के अध्यात्म संकीर्तनः

भक्ति साधना में नाम और लीला दोनों प्रकार के संकीर्तनों का महत्वपूर्ण स्थान है। ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तन वैष्णव भक्ति

के अत्कृष्ट उदाहरण हैं। अपनी मुंजल वाणी को उन्होंने सरस रूप में बहाकर ''हरि-संकीर्तन'' में ही सारा जीवन बिता दिया था। अन्नमाचार्य जी के शब्दों में संकीर्तन की महानता इस प्रकार है -

''अन्नि मंत्रमुलु निदे आवहिंसेनु
वेन्नतो नाकु गलिके वेंकटेशु मंत्रमु

अर्थात् सभी मंत्रों का सार विष्णु (वेंकटेश्वर) संकीर्तन है। नारद, प्रह्लाद, ध्रुव तथा विभीषण आदि भक्तगण ने इसी मंत्र का सहारा लिया था। वही मंत्र आज हमारे लिये भी भवसागर पार करने के लिए एक मात्र उपाय है। इस प्रकार उन्होंने जिस मंत्र को अपनाया था उसे सारे संसार को ढिंढ़ोरा पीटकर उपदेश देते हैं। पुराण तथा इतिहास भी इसके साक्षी हैं कि पहाड़ जैसे चोर पाप को भी ''हरि'' नाम स्मरण खंड-खंड कर देने में समर्थ है।

''अंतरंगमुन हरि दलचिन चालुनु
अंतिट मदि पनुलातडे मेरुगु''

अर्थात् अंतरंग में हरि का स्मरण मात्र कर अपने सभी कार्यों को उन्हीं पर छोड़ दें तो वही भगवान् हम सबकी रक्षा करेगा। जिस प्रकार ''मार्जाल किशोर न्याय'' में बच्चे का संपूर्ण भार माँ ही ग्रहण करती है, उसी प्रकार भक्त भी अपना सारा भार भगवान को सौंपकर निश्चिंत रूप से हरि स्मरण में लग जाता है।

अन्नमाचार्य हरि भक्ति में जात, कुल या शील को महत्वपूर्ण नहीं मानते। वे अजामिल आदि का उदाहरण देते हैं। ''जिसकी जिह्वा पर हरि नाम है, वह जीव चाहे किसी भी जाति का क्यों न हो, हीन नहीं है। इसी प्रकार अन्य संकीर्तन में कहते हैं - ''

''ब्रह्म मोक्कटे पर ब्रह्म मोक्कटे
कंदुवगु हीनिधकमु लिंदुलेवु
अंदरिकि श्री हरे अंतरात्मा''

अर्थात् परब्रह्म एक ही है। इस संसार में समस्त जीव एक ही है। सभी के लिए श्रीहरि ही अंतरात्मा है। जात-पांत आदि केवल शरीर के लिए ही मानते हैं, किन्तु आत्मा के लिए नहीं।

अन्नमाचार्य के संकीर्तनों में वेंकटेश्वर के अलावा अन्य विष्णु अवतारों की कथाएँ तथा प्रसंगों की छटा भी प्राप्त होती है। जैसे दशावतार, राम, कृष्ण, नारसिंह, विठ्ठल, कांचि के वरदराज, चेन्नकेशव स्वामी, मदनगोपाल, श्रीरंगनाथ आदि कई देवताओं के सुन्दर वर्णन प्राप्त होते हैं। रामायण सम्बन्धी कई संकीर्तन देख कर लगता है कि शायद इन्होंने पूरी रामायण की ही रचना की होगी। एक कीर्तन में भगवान राम से प्रार्थना करते हैं - ''हे राम जिस प्रकार तुमने रावण का सर खण्डन किया था उसी प्रकार आज मेरे पापों का भी खण्डन करो। कुम्भकर्ण आदि पर जिस प्रकार तुमने विजय पायी थी, उसी प्रकार मेरी इन्द्रियों पर भी विजय पाना। शिव धनुष की भांति मेरे दुर्गुणों को भी भंग करना। विभीषण की भांति मुझे भी शरण दो।''

एक ही कीर्तन में संपूर्ण रामकथा के कहने के भी उदाहरण हैं। जैसे -

''शरणु शरणु विशेष वरदा.....
मारीच सुबाहु मद मर्दन ताटका हर....
वालि विग्रह सुग्रीव राज्य स्थापक
लालित वानकर बल लंका प्रहार

पालित सवनाहल्य पाप विमोचक
पौलस्त्य हरण राम बहु दिव्य नाम।.....''

एक अन्य संकीर्तन में वे कहते हैं - ''लोकाभिराम को अपना रक्षक जान कर पूजा करो। चराचर जगत् के कर्ता ये राम ही हैं। मांगने से ही हमारी इच्छाओं की पूर्ति कर देते हैं। इसमें दशरथ के चर राम का जन्म, शिव धनुर्भंग, अहल्या का उद्धार, जटायु का मोक्ष, रावण वध, सेतु बंधन विभीषण का राज्याभिषेक आदि का वर्णन है।''

इन्होंने संस्कृत संकीर्तनों की रचना में भी अपनी प्रतिभा दिखाई है। इनके संस्कृत संकीर्तनों को भी अद्यात्म तथा शृंगार संकीर्तनों की श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी में अवतारों का वर्णन, दार्शनिक स्तुतिपरक कीर्तन हैं तो द्वितीय श्रेणी में प्रधान रूप से मधुरभक्ति का वर्णन है। वामन के सुन्दर रूप का वर्णन है -

पृथुल हेम कोपीन घरः
प्रथित वटुर्मेबलम् पातु।....
तरुणः छत्री दण्ड कमंडलु
धरः पवित्री दया परः
सुराणां संस्तित मनोहरः
स्थिरस्सुथीमें धिर पातु

विष्णु के अवतार व वैष्णव देवी तथा अन्य देवताओं के लीलागान के साथ-साथ कुछ संकीर्तनों में विष्णु भक्तों की महिमा का भी गान है। जैसे प्रह्लाद, ध्रुव, नारद, हनुमान, विभीषण आदि के उदाहरण पुराण तथा इतिहासों से लिये गये हैं। वैष्णव धर्म में हरि की

ही नहीं, हरि भक्तों की भी सेवा उत्तम मानी गयी है जिसे ''दास दासोहम्'' कहा जाता है। एक ही कीर्तन में इन सभी भक्तों का सुन्दर उदाहरण हैं -

''अति सुलभं विदे श्री पति शरणमु
अंदुकु नारदादुलु साक्षि...''

भगवान विष्णु की शरण ही सबसे सुलभ उपाय है, इसके उदाहरण नारद आदि हैं। इस ब्रह्मानन्द के अच्छे उदाहरण वेदों में प्राप्त होते हैं। हे जीव! तुम्हें भगवान के लिए बहुत शोध कर थक जाने की आवश्यकता नहीं। हरि तुम्हारे लिए सहारा है, जिसका साक्षी प्रह्लाद है। ध्रुव का उदाहरण है। सुख दुखों में थककर सम्पूर्ण रूप से हरि की करुणा हो मानने वाले अर्जुन को हम जानते हैं। इस प्रकार व्यास, सनक सनंदन, बलि आदि के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

जो हरि भजन नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ है। जैसे -

''हरिगोलुवनि कोलुवुलु मरि यडवि गासिन वेन्नेल्लु....
मरुगिनकि गानी पूवुल पूजलु मगडुलेनि सिंगारमुलु''

अर्थात् वह जीवन वन में पड़ने वाली चांदनी या विधवा के श्रृंगार के समान व्यर्थ है।

महाप्रलय के समय तीनों लोक जलमय हो गये थे। उस समय वटपत्र सोते हुए उस परमात्मा की लीलाओं का वर्णन किया है। वह संकीर्तन संगीत मर्मज्ञ भी अतिचाव से गाते हैं -

''दिब्बलु वेट्टुचु देलिन दिदिवो
उब्बु नोटिपड़ नोक हंसा.....''

तिरुपति में स्थित यही परमात्मा संपूर्ण जीवराशि में प्रकाशित होते हैं और अपने शरण में आये जीवों की रक्षा करने वाले ये राजहंस हैं।

अपने शरीर की तुलना एक मंदिर से करते हुए अन्नमाचार्य नित्य पूजा (मानसिक) करने का सुन्दर रूपक प्रस्तुत करते हैं। यथा - ''अन्तर्यामी जी मुझमें बसा है'' उसके लिए मेरा शरीर ही मंदिर है, सिर ही शिखर है। हृदय ही आसन है, दृष्टि ही दीपक है, वचन ही मंत्र है, जिह्वा ही घंटी है और विभिन्न प्रकार के स्वाद ही नैवेद्य हैं।

यहाँ उनके सभी संकीर्तनों का उदाहरण देना असम्भव ही है। अतः अन्त में उनके संकीर्तनों के सम्बन्ध में तेलुगु के मान्यवर विद्वानों के मंतव्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

''अन्नमय्या से पूर्व दक्षिण भारत में संस्कृत संकीर्तन किसी ने रचा नहीं था। केवल संगीत से सम्बन्धित लक्षणों का निर्देशन जायप सेनानी, शरंगदेव विद्यारण्य आदि ने किया था। स्तुति परक, पांडित्य परक, संगीतात्मक, लोक साहित्य पर आधारित संकीर्तनों की रचनाएँ अनगिनत संख्या में नये-नये रागों में बाँधना, संगीत तथा साहित्य को दो अश्वों की भांति चला सकना, पदों को शिष्ट साहित्य की श्रेणी में बिठाना आदि इनकी विशेषताएँ हैं।'' इतना ही नहीं, ''उन्हें संस्कृत साहित्य का अपार ज्ञान था। साथ ही अदिवन् शठगोपयित से वेद-वेदान्तों का अध्ययन किया। इसलिए उनके संकीर्तनों में वेद, पुराण और इतिहासों के संस्कृत वाक्यों के उद्धरण प्राप्त होते हैं। अन्य वाग्गेयकारों में इतनी अधिक संख्या में नहीं प्राप्त होते।''

''उनकी कविता शक्कर की गुड़िया है। अतः सर्वत्र मिठास ही मिठास। उनका संगीत अर्थ और भाव प्रधान है। ऐसा लगता है कि

इस पृथ्वी पर कभी-कभी गंधर्वों का जन्म हो जाता है। अन्नमाचार्य भी वैसे ही एक गंधर्व थे, जिन्होंने उसी जन्म में मुक्ति पायी।''

(2) पेदतिरुमलाचार्य के आध्यात्म संकीर्तनः

श्री अन्नमाचार्य ने अपने स्वर्गवास के अवसर पर अपने पुत्र पेदतिरुमलय्या से अनुरोध किया था, ''मेरे पश्चात् तुम भी प्रति दिन एक संकीर्तन भगवान को समर्पित करना।'' उसी प्रकार पेदतिरुमलय्या अपने जीवन भर संकीर्तन सेवा करते रहे। उन्होंने अपने पिता के संकीर्तनों के ताम्रपत्र पर ति. चा. की संज्ञा दी थी। इतना ही नहीं, पत्तों की लंबाई तथा चौड़ाई में भी भेद रखा था, ताकि दोनों मिल न जायें। इनके भी संकीर्तन आध्यात्म तथा शृंगार संकीर्तनों के रूप में विभाजित कर सकते हैं।

इन्होंने भी अपने संकीर्तनों में भगवान वेंकटेश्वर, विष्णु, आलवार, राम, कृष्ण, दशावतार, नरसिंह, वामन, विट्ठल आदि कई देवताओं का स्मरण किया है। विशिष्टाद्वैत सम्बन्धी कई संकीर्तन, वैष्णव धर्म, रामानुज की दार्शनिक भक्ति आदि कई तत्वों के संकीर्तन हैं। यद्यपि सभी का विवरण देना सम्भव नहीं है, फिर भी कुछ मुख्य अंशों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

इन्होंने स्थान-स्थान पर व्यक्त किया है कि ''हे भगवान् मैं तो पापी हूँ। यह जानते हुए भी तुम्हारे शरण में इसलिए आया हूँ क्योंकि मुझे मालूम है कि तुम अपने शरणागतों को पार करा देते हो।'' वे पूर्ण रूप से विश्वास करते हैं कि विष्णु के दासों का कभी बाल भी बांका नहीं हो सकता।

एक संकीर्तन में अत्यन्त भावुकता से कहते हैं -

''अल्लनाडु बालुडवै आवुल गाचेवेल
चिल्लर दूड़ नैते चेरि कातुबुगा।''

अर्थात् जब तुम ब्रज में नन्हें बालक बन कर गायों को चराते थे उस समय मुझे भी उनमें से एक बछड़ा बन जाना था, या एक गोपी बनना था ताकि मुझे भी तुम अपना सकते। उसी प्रकार रामावतार में एक पत्थर या एक वानर भी बनता तो भी तुम्हारी कृपा का पात्र बन जाता था। इस पद को पढ़ने पर रसखान की पंक्तियाँ अवश्य स्मरण आती हैं -

''मानुष हों तो वही रसखानि बसों ब्रज गोकुल गाँव के ग्वालन।
जो पसु हों तो कहा बसु मेरो चरों
नित नन्द की धेनु मंझारन।''

दूसरे स्थान पर वे कहते हैं - हे भगवान अब तुमसे और कुछ नहीं चाहता, जो कुछ देना था तुमने मुझे पहले ही दिया है। अब केवल शरणागति की ही चाह है। उनका कहना है कि मुझे तुम्हारा सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य या सालोक्य की आवश्यकता नहीं। केवल तुम्हारे दासों की सेवा करने का सौभाग्य मिले ऐसा मुझे वर दो। क्योंकि वैष्णव धर्म में विष्णु से भी श्रेष्ठ विष्णु भक्तों की सेवा तथा भक्ति की उत्तमता स्वीकारते हुए, नारद, अंबरीष, प्रह्लाद, ध्रुव, वशिष्ठ, सनक, सनंदन, अक्रू, हनुमान आदि भक्तों की गाथाओं का माहिमा गान करते हैं।

एक अन्य स्थान पर भगवान को चुनौती देते हैं कि ''क्या तुम अपनी थोड़ी सी कृपा का मुझ पर प्रसारण करोगे इससे तुम्हारी महिमा में घाटा थोड़े ही पड़ जाएगा। सारे संसार पर अपनी किरणों

का प्रसार करते हुए भी भगवान सूर्य के किरणों में कभी नहीं आती।''

सभी से अनुरोध करते हैं - ''रामनाम का जप करो जिसके कारण दोषों का शमन होगा। रामनाम तो शान्तिकारक है, सुख देने वाला है। एक अन्य कीर्तन में रामायण की घटनायें-शिवधनुष का भंग, अहल्या का उद्धार, राक्षस संहार, जटायु की मुक्ति, विभीषण का राज्याभिषेक, भार्गव राम का गर्व भंग आदि का उल्लेख करते हैं।''

कहीं-कहीं उन्होंने यह संशय प्रकट किया है कि हे भगवान! मैं तो सिर्फ तुम्हारी ही शरण में आया हूँ। मालूम नहीं तुम मेरा उद्धार किस प्रकार करोगे। तुम्हें प्रसन्न रखने के लिए मेरे पास कुछ भी उपाय नहीं हैं। समुद्र लांघने के लिए मैं हनुमान नहीं हूँ, मीठे फल चखाने के लिए न ही मैं शबरी हूँ, सीता जैसी कन्या देने के लिए न ही मैं राजा जनक हूँ। तुम्हें अपनी पीठ पर बिठाने के लिए गरुड़ भी नहीं हूँ। तुम्हें सुख देने के लिए न ही मैं एक गोपिका हूँ। अपने गान से सम्मोहित करने के लिए न ही मैं नारद हूँ। या जटायु के समान तुम्हारे कार्य में अपनी बलि भी नहीं दी है। फिर भी मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मेरा उद्धार करो। इस संकीर्तन का प्रभाव परवर्ती वाग्गेयकार श्री पट्नम सुब्रह्मण्यम अय्यर की रचना ''परिदान मिच्चिते पालिंतु वेमो'' में स्पष्ट दिखाता है जिसमें भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये गये हैं।

ये भी वर्णाश्रम धर्मों को व्यर्थ बताते हुए केवट, गजेन्द्र, घंटाकर्ण, वाल्मीकि आदि का उदाहरण देते हैं जिन्होने भगवान के शरण से ही मोक्ष पाया था।

जब तक हरि के प्रति भक्ति तथा श्रद्धा मन में नहीं आती तब तक जप तप आदि बाह्याडम्बर व्यर्थ मानते हुए एक सुन्दर उदाहरण दे रहे हैं -

''मिक्किलि नीट मुनिगे मीनुकदि स्नानमा
कोक्केर ध्यानमु सेसुकोरे अदि योगमा
निक्कि मेक आकुमेयु निड्डु अदेतपमा...''

अर्थात् गहरे जल में डुबकी लगाने पर मीन के उस डुबकी को स्नान नहीं कह सकते हैं। बक का एक पैर पर रहना ''योग'' भी नहीं है। बकरे का सदा पत्ते खाना ''तप'' नहीं। सदा लटके रहने वाले चमगादड़ ''सिद्ध'' नहीं। शेर आदि क्रूर पशु गुफाओं में रहने पर भी ऋषि उसी प्रकार नहीं बनते जिस प्रकार पक्षी आकाश में विहार करने पर भी देवता नहीं, तथा वन में रहकर भी वानर ''वनवासी'' नहीं कहे जाते। वृक्षों के न बोलने को मौन व्रत नहीं कह सकते। कपड़े न पहननेवाले बालक ''दिगम्बर'' नहीं बनते।

आशा, मोह, काम, भ्रांति, क्रोध आदि विकारों में पड़कर जीव अपने मार्ग से भटक जाता है। गुरुपदेश पाकर भगवान की कृपा का पात्र बन सकने के उदाहरण तथा गुरु के प्रति श्रद्धा, गुरु की महिमा का वर्णन आदि के भी कीर्तन प्राप्त होते हैं।

ये कहते हैं कि ज्ञानियों को मुक्ति हरिनाम से ही प्राप्त होती है। मोक्ष आकाश, पाताल या पृथ्वी में नहीं है। वह तो है ''श्रीकांत का स्मरण करने वाले भक्त के मन में है'' अमृत न ही सुरों के पास है, न ही जलधि में। वह है तो, ''हरिदासों की पूजा करने वाले भक्त के

हाथों में।'' इसी प्रकार सुख ''शंख चक्र की मुद्रा धारण करने वाले ज्ञानी के देह में है।'' हरि की शरणागति ही को वे औषधि मानते हैं।

अन्यों की सेवा कर जीने को वे उचित नहीं मानते हैं। उससे श्रेष्ठ अरण्य के पशु पक्षी या वृक्ष बन कर जीना मानते हैं। धन के लोभ में राजाओं या नरों की सेवा करना भी इन्हें पसंद नहीं था। अद्वैत का खंडन भी ये अत्यन्त तार्किक रूप से करते हैं। केशव, अच्युत, जनार्दन आदि विष्णु के नाम लेकर शृंगार के रूप में संकीर्तन लिखा है तो कहीं-कहीं एक कीर्तन में सभी के नाम। जैसे - संकीर्तन ''मच्च्कूर्म वराह नारसिंह सिंह वामना, इच्चा राम राम राम हितबुद्धि कलिकी'' तथा ''शंकम नीवु साक्षि चक्रम नीवु साक्षि-वंकलाड़ भुजमुल ब्रासुकोंटिमिमुन्नु'' संकीर्तन - 238 से 254 तक केशव के नामों के संकीर्तन शृंखला के रूप में लिखे गये हैं। भगवान विष्णु की व्यापकता के विषय में कहते हैं - ''सप्तऋषि इसी देव का ध्यान करते हैं, शेष नाग इन्हीं की शय्या बनता है, ब्रह्मा के पिता हैं, वेद इसी को ढूँढते हैं, नारद, शुक आदि मुनि भी इसी देव का भजन करते हैं।''

कृष्ण जनन का सुन्दर संकीर्तन एक है जिसमें कवि ने अत्यन्त भक्ति और भावुकता से कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया है - ''श्रावण बहुला अष्टमी के चंद्रोदय के समय कृष्ण का जन्म हुआ। वह कालिया नाग का बैरी है और कंस के लिए तो असनिपात ही है। तृणावर्त के लिए यह कालयम तथा ''साल'' वृक्षों के लिए कुल्हाड़ी है। शकटासुर लिए कृपाण, बकासुर के प्रति आरा हैं, तो अक्रूर के लिए मानो मीठे फलों का रस ही हैं।''

अर्थात् प्रभु क्रूरों तथा दुष्टों के लिए मारणायुध हैं तो भक्तों के लिए अत्यन्त उदार। भक्तों को सदा चिन्मयानंद प्रदान करते हैं। हाँ, अन्त में कवि कृष्ण को अपने इष्टदेव वेंकटेश्वर से एकाकार करना नहीं भूलते।

विष्णु के गुण तथा नाम महिमा का भी वर्णन है। जैसे ''स्मरण मात्र से तुम्हारा दैव मिल जाता है। सुलभ रूप से मिलने वाले हरि के लिए शोध करो। उस नाम को लगातार जपने से वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति हो जाती है - यही श्री वेंकटेश्वर हैं। ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी यही चाह है।'' तुम भी अतः इस मार्ग से हटना नहीं। अपने गुरु रामानुज के प्रति उन्होंने अत्यन्त भक्ति के साथ लिखा है - ''ये सभी से उन्नत हैं क्योंकि सर्व लोकों के शास्त्रों को पृथ्वी पर लाये हैं। भगवान विष्णु के भक्ति के साक्षात् अवतार रामानुज हैं तथा सुज्ञान के ये वास स्थान हैं।''

कुछ संकीर्तनों में भगवदगीता, वेद-शास्त्र, लोक आदि की भावनाएँ ही नहीं वरन् उनके वाक्यों को भी यथा रूप से ग्रहण किया है - जैसे ''तद्विषणोः परमपदं, मामेकं शरणं ब्रजः, योग क्षेमं वहाम्यहम्'' आदि-आदि।

देखिए एक स्थान पर भगवान की अपार कृपा को सुन्दर उदाहरणों से प्रस्तुत कर रहे हैं - ''हे भगवान। तुम्हारे जैसे दाता तो कोई मुझे दिखाई नहीं देता है। नन्हें से ध्रुव की तपस्या पर संतुष्ट होकर तुमने उसे ''ध्रुव लोक'' का अधिपति ही बना दिया। केवल यज्ञ का बुलावा देने वाले उसकी रक्षा चक्र से की। छुटपन की गोपिकाओं को तुमने इह तथा पर दोनों लोकों के सुख दे दिये हैं। केवल गुह की नाव में चढ़कर उसे तुमने भवसागर से पार करा दिया।

हे वेंकटेश्वर! तुम अपने भक्तों पर अत्यन्त उदारता से वरदान तथा कृपा का प्रसारण कर देते हो।'' कितना सुन्दर संकीर्तन है यह।

कुछ संकीर्तन पूरे संस्कृत शब्दों से दंडक जैसे लगते हैं।

अपने पिता के ही समान इनका भी विश्वास है कि हरिदासों की जात-पाँत से कुछ सम्बन्ध नहीं, उनका तप ही उनकी महानता है।

''छोटे से कौए के कारण महान् अश्वत्थ वृक्ष का जन्म होता है। सीप से मोती निकलते हैं, तो मामूली पत्थरों के बीच ही हीरे होते हैं। मक्खियों के कारण मधु बनता है तो कीचड़ में ही कमल उपजता है तथा कीड़ों से ही मूल्यवान रेशम निकलता है।'' अतः ज्ञानी, हरिदास, पुण्य-पुरुष आदि का जन्म कहाँ हुआ है इसकी क्या चिन्ता वे तो भगवान के भक्त हैं बस इसीसे अपना नाता है। कबीरदास भी कहते हैं -

''जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।''

''हे भगवान इस सृष्टि के तुम ही कर्ता तथा भर्ता हो'' - कहते हुए कवि कुछ तर्कपूर्ण प्रश्न पूछते हैं - ''तुमने जीवों को स्वतंत्रता क्यों दी? असुरों को पाप, अमरों को पुण्य तुमने ही दिया था। क्या तुम सभी को पुण्यात्मा ही नहीं बना सकते थे? तुमने पाण्डवों को जय तथा कौरवों को पराजय दी थी। इस प्रकार से भूभार कम करने से अच्छा था उसी प्रकार से पैदा करते ताकि उनके मध्य वैर ही न होता। कुछ व्यक्तियों को अज्ञानी कुछ को सुज्ञानी, कुछ को पापी, कुछ को पुण्यात्मा पैदा करने के स्थान पर, सभी को अच्छे ही पैदा करते थे तो कितना भला होता।'' वे सभी का मूल श्री हरि को ही मानते हैं। हरि स्मरण बिना शास्त्र ज्ञान वृथा है।

एक स्थान पर षड़रिपु की तुलना करते हुए कहते हैं - ''काम'' अछूत जैसा है। ''क्रोध'' मासिक धर्म जैसा है, ''लोभ'' जूठन है। मद्य जैसा ''मोह'' तथा मांस जैसा ''मद'' और भ्रम जैसा ''मत्सर''। प्राणियों को ये सभी गुण सताते रहते हैं। इन गुणों से महान से महान व्यक्ति भी छुटकारा नहीं पा सकता। इन सबसे मुक्ति पाने का केवल एक ही उपाय है - तुम्हारी शरणागति।

ये मानते हैं कि ''जीव परतंत्र है तथा भगवान स्वतंत्र है - यह मान्यता विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुकूल है। मानते हैं - तुम्हारी कृपा ही मूल धन है। हे परमेश्वर! तुम तो अनन्त हो, मैं केवल अणु मात्र हूँ! अतः तेरी सेवा करने की शक्ति मुझे तुम्हें ही देनी होगी। इतना ही नहीं और भी आगे वे कहते हैं - ''मेरे जैसे अधम की रक्षा करने के कारण तुम्हें बहुत पुण्य मिल जाएगा।'' इस कथन में भगवान के साथ आत्मीय निकटता प्रकट होती है।

परमेश्वर ही सकल चराचर सृष्टि का आधार है। ''हे देव! तुम्हारी महिमा को हम कैसे जान सकते हैं? एक तुम ही अनेक रूपों में रहते हो। तुम सभी जीवों के लिए आत्मा स्वरूप और पंचभूतों के आधार हो। मूर्खों के मन की माया भी तुम ही हो। वृक्षों का चैतन्य तुम्हारा ही है। सुरों में ईश्वर बन कर तथा असुरों में अगोचर बनकर तुम्हीं वास करते हो। जीवन्मुक्तों का अनन्द भी तुम्हीं हो। सम्पूर्ण जगत् के साक्षी बनकर वेदों के अर्थ हो। अतः परमेश्वर सर्वव्यापी है। उस परमेश्वर की स्तुति सम्पूर्ण रूप से करने में कोई भी समर्थ नहीं। तैंतीस करोड़ देवता, दो हजार जिह्वाओं से शेष नाग, वेदों के अनन्त शब्द, अष्टादश पुराणों के वाक्य, सनकादि मुनियों की उक्तियाँ, व्यास-वाल्मीकि आदि कवियों की रचनाएँ, सप्त करोड़ मंत्रों के अर्थ,

छप्पन अक्षर (तेलुगु भाषा की वर्ण माला) - इनमें से कोई भी श्री वेंकटेश्वर के गुण तथा गाथाओं को गाने में समर्थ नहीं है! अब मुझ जैसे अल्प प्राणी का क्या कहना।''

कवि मानते हैं कि मोक्ष प्राप्ति हरिदासों के लिए ही अत्यन्त सुलभ है। वे मानते हैं कि जीव अज्ञान के कारण अपने कार्यों पर व्यर्थ गर्व करता है, किन्तु उनके साथ जुड़े पापों को नहीं जानता। सभी कार्यों के कर्ता मानने वाला जीव हरि की प्रेरणा को भूल जाता है। हे हरि! तुम ही उसकी रक्षा करो। क्योंकि ये सब तुम्हारी माया के ही कारण है। ''साथ ही उन्हें आश्चर्य है कि क्या हरि सदा अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए ही प्रतीक्षा करते हैं? वरना स्मरण मात्र से कैसे उनका उद्धार कर देते हैं।''

कुछ संकीर्तनों में अपने जीवन सम्बन्धी घटानाओं में तत्कालीन परिस्थिति, वृद्धावस्था आदि की झलकियाँ दिखायी गयी हैं।

अन्त में उनकी एक सुन्दर रचना है जिसमें वे अपनी देह तथा मन को भगवान को समर्पित करते हुए कहते हैं - ''हे परमात्मा! मेरा देह ही तुम्हारे लिए तिरुपति क्षेत्र है। मेरे हृदय कमल को ही सोने का महल मान लो। मेरे विज्ञान तथा पांडित्य तुम्हारे सेवक हैं। परमात्मा! परमात्मा! मेरा मन ही रत्नों से जड़ा हुआ पलंग है तथा मेरी आत्मा ही तुम्हारे लिये कोमल शय है। मेरी सांस ही नारद आदि का मधुर गायन है। हे प्रभु मेरे कर्मों की गिनती न करते हुए मेरा उद्धार करो!''

''सम्पूर्ण विश्व तुम्हारी ही महिमा है। केवल तुम्हीं हो अन्य कोई नहीं। माता बन कर शिष्ट की रक्षा करते हो तथा पिता बन कर पोषण। पत्नी के रूप में मोह देते हो। गुरु के रूप में उपदेश देते हो

तथा पुत्र के रूप में पालन भी। राजा बन कर आज्ञा देने वाले भी तुम ही हो तथा सेवक बन कर आज्ञा का पालन भी तुम ही करते हो। भगवान बन कर पूजा ग्रहण करते हो तथा सभी प्राणियों का आधार भी बनते हो। तुम ही भक्त के मन में भक्ति को पैदा कर, वैकुण्ठ भी प्राप्त करने में सहायक बनते हो।''

कवि सहज योगी के लिए आवश्यक गुणों को इस प्रकार बताते हैं - ''संसार से विरक्त हो कर विष्णु भक्ति से एक क्रमिक जीवन बिताना है। मन का शोध कर हरि की चिन्ता करते हुए सभी प्रकार की वासनाओं से छुटकारा पाकर आनन्द से रहना है। विवेक का सहारा लेकर वैमनस्य छोड़ मौन रहना भी आवश्यक है। करुणा की भांति परिपूर्ण हो कर श्री वेंकटेश्वर की सेवा में ही मन लगा कर ध्यान मग्न रहना है।''

ऐसे एक से एक सुन्दर भावनाओं को लेकर पेदतिरुमलाचार्य अपने जीवन के आखिरी क्षणों तक आत्माश्रयी रूप में संकीर्तन करते हुए धन्य हो गये।

(3) ताल्लपाक चिनतिरुमलाचार्य के आध्यात्म संकीर्तनः

अपने पितामह तथा पिता की ही भांति चिनतिरुमलाचार्य भी वाग्गेयकार थे। चिनतिरुमलाचार्य ने अपने पंद्रहवें वर्ष के पश्चात् षोड़श वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के बाद से ही संकीर्तन लिखे हैं। इन्होंने अपने संकीर्तनों में स्थान-स्थान पर अपने पितामह अन्नमय्या को विशेष भक्ति के साथ स्मरण किया है, जिनसे उन्हें गुरुपदेश प्राप्त हुआ था। ''अप्पनिवरप्रसदि अन्नमय्या'' इस संकीर्तन में वे कहते हैं अन्नमय्या वेंकटेश्वर की कृपा के विशेष पात्र रहे और हमें उन्होंने

भगवान बालाजी का भक्ति मार्ग को दिखाया है। एक अन्य स्थान पर कहते हैं - ''अन्नमय्या ही हमारे गुरु, पिता, माता सब कुछ हैं, जिन्होंने मुझे सही मार्ग पर चलना सिखाया है।'' ... ''अन्नमय्या ने ही मुझे श्री वेंकटेश्वर मंत्र का उपदेश दिया था।'' इतना ही नहीं अन्नमय्या से ही इनके वंशजों ने वैष्णव धर्म को प्राप्त किया था। अतः ये अपने पितामह के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिन्होंने पापकर्मों से मुक्ति पाने के लिए संकीर्तन सेवा का उपदेश दिया तथा उन्हें ज्ञानी बनाया है।

''पत्नी, पुत्र, बंधु-बांधव, संपत्ति, काम, क्रोध आदि के कारण मोह उत्पन्न होता है। किन्तु इन सभी बन्धनों से मुक्ति पाने का सुन्दर मार्ग मुझे आचार्य ने दिखाया है। अतः मेरा उद्धार हो सकता है।''

इन्होंने भी अपने पिता तथा पितामह के ही अनुसार कई देवताओं की स्तुति की है - श्री नारसिंह, चेन्नकेशव, गोपाल, राम आदि। अपने प्रथम आध्यात्म कीर्तन में उन्होंने रामकथा का वर्णन किया है।

अन्नमय्या की भांति ये भी ढिंढ़ोरा पीटते हुए कहते हैं कि, 'कलियुग में श्री वेंकटेश्वर ही दैव हैं।' ये कहते हैं कि बिना किसी 'कष्ट के श्री वेंकटेश्वर रूपी संजीवनी के सहारे भवसागर को पार कर सकते हैं'। वे मानवों से कहते हैं, तुम्हें किसी विशेष कड़वी औषधि के सेवन की आवश्यकता नहीं, पास ही संजीवनी जैसा यह मंत्र है। इसे पाने के लिए न पृथ्वी में न नदी-नालों में खोजना है न मूल्य दे कर खरीदना ही है। द्वीप तथा समुद्रों में या गुफाओं में ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं। समीप में ही श्री वेंकटेश्वर (रूपी) संजीवनी है।

जात-पांत, वंश, गुण, पाप आदि, भगवत्कृपा के समुपार्जन में बाधा नहीं बनते हैं। इन विचारों को भी इन्होंने व्यक्त किया है। निम्नलिखित संकीर्तन में कहते हैं - ''भगवान की कृपा पाने में कुछ भी बाधा नहीं है। ध्रुव, अजामिल, प्रह्लाद आदि भक्तों को मुक्ति कैसे मिली थी? वाल्मीकि या अहल्या का उद्धार भी भगवान ने गुण या जात के आधार पर नहीं किया था।'' केवल भगवान के प्रति अपार श्रद्धा की आवश्यकता है।

हरिस्मरण के उपदेश के साथ-साथ ये गुरु की महानता का भी उल्लेख करते हैं - ''हे जीव! तुम अपने गुरुचरणों को कभी न छोड़ना।''

कवि भगवान से प्रश्न कर रहे हैं कि ''हरि! मेरा मोह कब टूटेगा? कपट से मैं मुक्ति कब पाऊँगी। मैं विकारों को छोड़ निपुण कब बनूँगा? मात्सर्य को खोकर हे भगवान! मुझे निश्चलता कब प्राप्त होगी? ये अपने अवगुणों को नष्टकर भगवान के प्रति श्रद्धा पाना भी उन्हीं की कृपा के कारण मानते हैं। वे कहते हैं - ''हरि से प्रार्थना करने पर सभी कार्य ठीक हो जाते हैं।... इस गहरे संसार रूपी समुद्र को यह जीव किसके सहारे तैर सकेगा? हाँ, हरि की शरण में जाकर हँसते हुए अत्यन्त सुलभता से इस सागर को पार किया जा सकता है।''

स्थान-स्थान पर ये ''जीव'' ''चित्तम!'' आदि सम्बोधन करते हुए मन के विकारों को छोड़ हरि भक्ति पर मन लगाने की शिक्षा तथा उपदेश देते हैं। सारा समय व्यर्थ सांसारिक लंपटों में ही गुजर जाता है। जैसे ''निद्रा में, नाना दोषों में, वृद्धावस्था में जो दिन खो गए थे, क्या वे चाहने पर भी वापस आयेंगे इसी तरह पुत्रों के लिए, पत्नी

के लिये, सांसारिक भोगों के लिए दिन बिता दिये थे, किन्तु उनमें कुछ सुख नहीं हैं। धन-धान्य के पीछे पड़कर भी दिन व्यर्थ में चले गये थे। किन्तु जीने का अर्थ भगवान को मन में प्रतिष्ठित कर, सेवा करते हुए जीना है।'' अतः वे संदेश देते हैं - हे मानस! तुम माया में फंसकर देह सम्बन्धी बन्धु मित्रों के लिए, भ्रमवश धन-सम्पत्ति के लिये तथा ऐहिक सुखों के लिए राजा-महाराजाओं की कृपा के लिए अपना समय व्यर्थ कर देते हो। किन्तु तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि विष्णु इन सभी से उन्नत हैं। विष्णु भक्ति में जीवन बिताने से इन सभी से बढ़कर महान फल प्राप्त होते हैं।

अन्य स्थान पर ये कहते हैं कि पंचेन्द्रियों को भगवान ने इसलिए दी हैं ताकि उनका सदुपयोग हो। ''यह शरीर भगवान को भजने के लिए है, माया में पड़ने के लिए नहीं। भगवान को चाहने के लिए यह मन दिया गया है किन्तु ऐहिक भोगों को चाहने के लिए नहीं, जिह्वा भगवान के यश गाने के लिए है न कि व्यर्थ वार्तालापों में फंसने के लिए। भगवान के दिव्य सुन्दर रूप के दर्शन के लिए नेत्र हैं, किन्तु मोह में पड़कर सभी को देखने के लिए नहीं।''

संसार के व्यक्ति आपत्तियों को दूर करने लिए नक्षत्र, ग्रह आदि की शांति करवाते हैं। चिनतिरुमलाचार्य कहते हैं कि श्रीहरि कीर्तनों का संकीर्तन करना श्रेष्ठतम शांति पूजा है।

संस्कृत शब्दों से भरे संकीर्तन इन्होंने भी कई लिखे हैं।

संख्या में यद्यपि कम लगते हैं किन्तु गुणों में इनके संकीर्तन भी अन्नमय्या तथा पेदतिरुमलय्या के समक्ष रखे जा सकते हैं। इन्होंने भी अन्नमय्या की भांति अद्वैत वादियों तथा हठ योगियों की कटु निन्दा

की है। इन्होंने भी प्रभाती गीतों की रचना की है जैसे - ''गोविन्द। जागो तुम्हारे द्वार पर देवता, मुनि आदि प्रमुख प्रतीक्षा कर रहे हैं।'' ताल्लपाक के कवियों के प्रभाती गीत आज भी तिरुपति में गाये जाते हैं।

शृंगार संकीर्तनः

(1) अन्नमाचार्य के शृंगार संकीर्तनः

अन्नमाचार्य के प्राप्त संकीर्तनों में अधकांश शृंगार संकीर्तन ही हैं। (लगभग पन्द्रह हजार प्राप्त हुए जिनमें से तेरह हजार शृंगार संकीर्तन हैं।) इन संकीर्तनों में शृंगार के सभी अंगों का सूक्ष्म वर्णन है। जैसे - संयोग और वियोग, नायक, नायिका उनके हाव - भाव आदि का हुआ है।

इनके शृंगार संकीर्तनों के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए श्री गौरिपेद्दि रामसुब्ब शर्माजी कहते हैं - ''गुरुओं से सीखे दार्शनिक विचार, आल्वारों की कथायें, नारद और शांडिल्य आदि भक्ति सूत्रों में चर्चित गोपिकाओं की भक्ति, अन्नमाचार्य के सामने आदर्श थे। इनके साथ-साथ भागवत और विष्णु पुराण के आधार पर कहीं-कहीं कवि ने अनपढ़ों का भी शृंगार वर्णन किया है, जो भाव आल्वारों में नहीं गोचर होते हैं।'' वेंकटेश्वर दक्षिण नायक हैं। वे तो शृंगार के नव-सावयव-साकार रूप हैं। उनके दक्षिण नायकत्व का वर्णन कवि नायिका से इस प्रकार कहलवा रहे हैं - ''मैं तो तुम्हारे गुणों को अच्छी तरह जानती हूँ। थोड़ी सी छूट दे दी तो तुम कलंबिका साग के समान फैल जाते हो। गोपिकाओं से विवाह किया, अन्य कई कामिनियों से मिलन होकर अब मुझसे विवाह किया है।'' नायक के विरह का भी

वर्णन स्थान-स्थान पर हुआ है। नायक सखियों से कहता है कि मुझे तुम्हारे उपचारों की आवश्यकता नहीं, मेरी प्रियतमा से मिलन चाहिए। अतः तुम उससे मुझे मिलाओ। कवि स्वयं नायिका या सखी या दूती बन जाता है। आदि दम्पति अलमेलमंगा और वेंकटेश्वर का श्रृंगार संसार के आदर्श ही नहीं, वरन् जगत् कल्याणकारी भी है। इनका विरह जीवात्मा और परमात्मा का विरह है। यद्यपि सम्पूर्ण पद में विरह वर्णन होने पर भी अन्नमाचार्य अन्त में वेंकटेश्वर की मुद्रा के साथ नायिका-नायक का मिलन करवाना उनकी अपनी विशेषता है। इन संकीर्तनों में विभिन्न प्रकार की नायिकायें - स्वकीया, दिव्या, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, धीरा आदि के साथ-साथ वासकसज्जा, अभिसारिका, कलहांतरिता, खंडिता आदि अष्टविधि नायिकाओं का विस्तृत चित्रण है। इतना ही नहीं पद्मिनी, शंखिणी, हस्तिनी और चित्रिणी जाति की नायिकाओं का भी वर्णन इन्होंने किया है। जैसे एक ही पद में चारों का वर्णन -

''अन्नि जातुलु दाने युन्नदि
कन्नुल कलिकिकि मायारचेनो यनग''

(सभी जातियों की नायिका वही लग रही है।)

अन्नमाचार्य के श्रृंगार संकीर्तनों ने नायक श्री वेंकटेश्वर होने पर भी उन्होंने श्री कृष्ण से अभिन्न ही माना गया है। अतः स्थान-स्थान पर श्री कृष्ण के चरित्र का वर्णन तन्मयता से कवि ने किया है। अन्नमाचार्य की नायिका सहज सुन्दरी और सुकुमारी है। वह अपने अंग प्रत्यंग रूपी फूलों से ही अपने पति वेंकटेश्वर की पूजा करती है -

''कलिकि नी कनुचूपु कलुव रेकुल पूजा
ललन नी नगवु मोल्लल पूजा।''

अर्थात् नायिका के वीक्षण मात्र से कमल दलों से पूजा हो जाती है। मंद मुसकान से ही कुंद कुसुमों की अर्चा होती है। उंसास छोड़ने से चम्पा पुष्पों से पूजा।

इस दिव्य सौन्दर्य की मूर्ति नायिका को सौन्दर्य प्रसाधनों की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि उसका मुख ही दर्पण है जिसमें वेंकटेश्वर अपने आपको देख सकते हैं। वह स्वयं लक्ष्मी है इस कारण आभूषणों की भी आवश्यकता नहीं है। मुस्कुराने से मोती और रूठ जाने पर माणिक्य बिखरते हैं। इस नायिका को पाकर वेंकटेश्वर स्वयं ''लखपति'' बन गये हैं। एक अन्य स्थान पर कवि सखियों के द्वारा लक्ष्मी के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार से करवा रहे हैं -

''चूडरम्मा चेलुलार सुदति चक्कदनालु''

अर्थात् नायिका का जन्म क्षीरसागर में होने के कारण उसका मुख चन्द्रमा के समान होने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि चन्द्रमा स्वयं उसका भाई है। मन्दहास अमृत जैसा है क्योंकि अमृत उसके मायके का धन है। इसके गुण क्षीर सागर के ही समान हैं। इसके पांव कल्पतरु के किसिलय के समान होना भी कोई विशेष बात नहीं क्योंकि वह कल्पतरु भी उसके आंगन का ही है।

कुछ संकीर्तनों में नायक और नायिका के ''काम यज्ञ'' का वैदिक होम प्रक्रिया के अनुसार विस्तार पूर्वक वर्णन है - जैसे

''काम यागमु जैसे कलिकि तन प्रेम
देवता प्रीतिगानु।''

इस संकीर्तन में नायिका यज्ञ कर रही है - अपने प्यार को देवताओं की प्रीति के लिए अर्पित कर रही है। पान खाने से जो रस निकलता है वही सोमपान है। सुन्दर कंठ ध्वनि ही वेद मंत्र हैं। विरहाग्नि ही होमाग्नि है। पसीना ही व्रत के समय करने वाला स्नान है। श्री वेंकटेश्वर के साथ मिलन ही दिव्य भोग है। इसी प्रकार का वर्णन नायक के प्रति भी है। कई संकीर्तन नायक और नायिका के दिव्य सौन्दर्य से भरे प्राप्त होते हैं।

''अतिव जव्वनमु रायलकु बेट्टिनकोट
पति मदन सुख राज्य भारंबु निलुपु।''

इस पद में कवि कहते हैं कि - नायिका का सौन्दर्य सहज दुर्ग है, उसमें नायक वेंकटेश्वर अपने मदन-साम्राज्य का भार सुख से संभालते हैं। नायिका की दृष्टि मेघ-मध्यगत तड़ित रेखा-सी है, जो नायक के दिल का अंधेरा दूर करती है। उसका मुख चन्द्रमा ही है और इसीलिए नायक के नैन-कुमुद नित्य प्रफुल्लित रहते हैं। नायक को एकान्त स्थान ढूँढ़ने का कष्ट है ही नहीं, क्योंकि नायिका का केश कलाप खुद अंधेरा फैलाता है। नायिका की बाहु लताएँ प्रभु वेंकटपति की प्रणयलता से लिपट कर विहार कुंज का स्वयं संपादन करती हैं।

अन्नमाचार्य अपने श्रृंगार संकीर्तनों में वेंकटेश्वर को नायक तथा स्वयं को नायिका मान कर रचना करते हैं। इन्हें पढ़ कर आश्चर्य होता है कि एक पुरुष, जिनका इतना बड़ा परिवार था कैसे इनकी रचना की होगी मानों अपने में पुरुषत्व ही नहीं है। कभी-कभी लगता है कि स्त्रियाँ भी इनकी तरह अपने मन के भावों को व्यक्त

करने में असमर्थ ही हैं। इन वर्णनों में भी ऐसे तन्मय हो जाते हैं जो बड़े से बड़े योगियों को भी संभव नहीं।

अन्नमाचार्य के कोमल भावों का सुन्दर उदाहरण देखिए -

''कुलुकुचु नडवरोयम्मलाला'' इस संकीर्तन में कवि ने नववधु अलमेल मंगा की पालकी का कहार पुरुषों के नहीं कोमलियों के हाथ दिया है। हँसी मजाक में जब वे तेजी से चलने लगीं तो वधु कांपने लगी। वधु फूल बिखरने लगे। यह कवि से देखा न गया। अतः उन कहारों से अनुरोध करते हैं कि अरे! धीरे-धीरे चलो। देखो उसके मांग का चन्दन सारे शरीर पर बिखर गया है, कंकणों के हिलने के कारण उसके कोमल हाथ लाल हो गये हैं। एक स्थान पर कवि रूठ गई नायिका से प्रेम आरोगने के लिए मिन्नतें कर रहे हैं क्योंकि नायिका के चित्र को भूख लगी है - ''वलपारगिंचवम्म वनिता.....''

अन्त में श्री राल्लपल्लि अनंतकृष्ण शर्मा जी से हम भी सहमत हैं ''अन्नमाचार्य के संकीर्तन सारस्वत क्षीर सागर हैं। भक्ति और शृंगार में स्वतंत्र सन्निवेश, भाव ही नहीं स्वच्छ देशी और ग्रंथिक भाषाओं के सम्मिश्रण से रसिक और सहृदयों को आनन्द पहुँचाते हैं।''

(2) पेदतिरुमलाचार्य के शृंगार संकीर्तनः

अन्नमाचार्य का आदेश पाकर उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य जी ने भी शृंगार संकीर्तनों की रचना की। पिता और पुत्र के संकीर्तनों में इतना साम्य है कि बहुत से संकीर्तन दोनों के मिल गये और अन्नमाचार्य के नाम से ही प्रचलित हो गये हैं। इन्होंने भी अपने संकीर्तनों में श्रीवेंकटेश्वर और अलमेल मंगा के दिव्य शृंगार का

वर्णन किया है। नायक - नायिका, दूती, सखी आदि कई पात्रों से कवि का साधारणीकरण हो जाता है।

एटुवंटि मोहमो इंति नीपै नतनिकि
तटुकुन उरमुन धरिइंचे निन्नु...

इस संकीर्तन में कवि का कहना है - हे नायिका (लक्ष्मी) तुम्हारे पति को तुम से प्रगाढ़ प्रेम है, इसीलिए उन्होंने तुम्हें अपने वक्षस्थल पर बसा लिया है। इतना ही नहीं, तुम्हारी चाल हाथी जैसी होने के कारण ही उन्होंने गजेन्द्र की रक्षा की। तुम्हारा निवास कमल होने के कारण वे भी कमलनाभ बन गये। तुम्हारी ग्रीवा शंख की तरह है, अतः उन्होंने पांचजन्य का धारण किया। शायद तुम्हारे केशों की कालिमा को देख कर वे स्वयं नीलवर्ण बन गये।

नायक और नायिका के मिलन के समय सभी ऋतु एक साथ आ गये। जैसे मिलन में नायिका के कपोल लाल हो गये, देखकर लगता है कि वसंत का आगमन हो गया है। नायिका की ऑखों से आनन्द की बूँदें टपकने से वर्षा ऋतु का आभास होने लगा है। अगर नायिका विरह में जलती है तो ग्रीष्म ऋतु सी लगती है। उसके मुख पर प्रसन्नता छा जाती है तो वह शरत्काल जैसी ही मनमोहक हो जाती है। नायक वेंकटेश्वर को देखकर लज्जा से सिकुड़ जाती है तो नायिका हेमंत ऋतु प्रतीत होती है।

नायक को नायिका कोस रही है - ''मैंने तुझे चंपा के फूलों से सजाया था तो अब ये मोगरे कहाँ से आ गये?'' इसी प्रकार से अन्य चिन्हों को भी दिखा कर वह रूठ जाती है। पति की कई मिन्नतों पर भी द्वार नहीं खोलती। इन सभी वर्णनों में कवि ने अद्भुत कौशल

दिखाया है। सखियों के रूप में स्वयं कवि ही नायिका को सीख सिखाता है। ''पुरुष की पत्नी कितनी भी सुन्दर हो फिर भी वह अन्य स्त्रियों की ओर आकर्षित होता है। वह तो उद्यान के तोते की भांति है। तुम हृदय पर विराजमान हो, फिर भी वह भूदेवी से मिलता है। अतः इन बातों पर तुम ध्यान देते हुए उसके बुलाने पर तुम पास आ जाना।'' शायद इसे हम उनके युग की नीति मान सकते हैं जब कि बहु पत्नी व्रत प्रचलित था। चाहे कितना भी रूठे या कठोर हों, किन्तु नायिका अपनी सखियों से प्रार्थना करती है कि उसे बुलाओ। उसके बिना मैं रह नहीं सकती। इन्होंने भी विरह के वर्णन के पदों में भी अन्त में नायक और नायिका का मिलन ही चित्रित किया है।

नायक और नायिका में कई साम्य हैं जैसे नायिका का मुख पूर्ण चन्द्र है तो नायक की आँख कमल। नायिका के केश भ्रमर हैं तो नायक के अधर मधु बरसाते हैं।

(3) चिनतिरुमलाचार्य के शृंगार संकीर्तनः

आज केवल 119 ही संकीर्तन इनके प्राप्त हैं। अधिकतर संकीर्तनों में नायिका की अनुभूतियों का ही वर्णन किया गया है। काव्य शास्त्र के अनुसार विभिन्न नायिकाएँ इसमें प्रत्यक्ष होती हैं।

इनके भी नायक तथा नायिका साक्षात् वेंकटेश्वर तथा अलमेलमंगा हैं। देखिए-नायिका का सैंदर्य वर्णन कितना अद्भुत है - इस इन्ती (नारी) के सौंदर्य की प्रशंसा किस प्रकार से कर सकते हैं। प्रियतम के हंसमुख वदन को प्रिय ने साक्षात चन्द्रमा ही मान लिया था। उसकी भृकुटि काम देव के धनुष जैसी थी तथा प्रिया की दृष्टि मानों कामदेव के बाण सी। उसके वचन कोयल की कूक के पर्यायवाची थे।

आलिंगन में पाये प्रिया को श्री वेंकटेश्वर साक्षात् शंपालता ही समझे थे तथा दोनों का मिलन अद्भुत था।

नायक वेंकटेश्वर की एक ही नहीं, कई नायिकाएँ हैं। अर्थात् वह दक्षिण नायक है। अतः एक नायिका दूसरी से कह रही है कि तुम अपने हाव-भावों के कारण मेरे पति को अपने आंगन से हिलने नहीं दे रही हो।

एक अन्य स्थान पर नायिका कह रही है कि तुम चाहे कैसा भी प्रेम व्यवहार अन्यों से करो किन्तु मैं तुम्हें एक कटु शब्द न कहूँगी।

देखिए इस संकीर्तन में नायिका का विरह वर्णन है - वह अपनी सखी से प्रार्थना कर रही है कि जाकर मेरे प्रिय से मेरी इस दशा का परिचय दो। अनजान में अगर मैंने कुछ कटु शब्द कह दिये हों तो मुझे क्षमा करने की प्रार्थना करना। उसने मुझे वचन दिये थे जिनका स्मरण कर मैं आज विरह की अग्नि में जल रही हूँ। उसे डर है कि कहीं नायक की उसके प्रति प्रीति कम न हो गयी हो। अतः बार-बार सखी से निवेदन करती है कि जाकर प्रिय से मेरी इस अवस्था का परिचय देना।

सखी नायक से नायिका की विरहावस्था का परिचय एक अन्य स्थान पर दे रही है कि वह तो केवल तुम्हारे आस पर ही जीवित है। तन पर कस्तूरी नहीं लगाती हैं। ताप के कारण हाथों में कमल रूपी बाण लेकर भी ताप का अनुभव कर रही है। हाँ अब तुम्हारा उससे मिलन हुआ है अतः वह प्रसन्न है।

एक अन्य स्थान पर नायक नायिका से कहता है कि देखो! हम दोनों की जोड़ी कितनी अच्छी बनी है।

चिनतिरुमलाचार्य ने अपने शृंगार संकीर्तनों में नायक को विभिन्न देवताओं के नाम से संबोधित करते हुए रचना की है जिनकी संख्या करीब-करीब 12 तक आती है। वे हैं - नरसिंह वेंकटेश्वर, चेन्नकेशव, चोक्कनाथ, चेन्नराय, विट्ठल, राम, बालकृष्ण, चेल्लपिल्लयराय आदि। ये सभी देवता आंध्र प्रदेश के विभिन्न प्रदेशों के ही देवता हैं क्योंकि उन्होंने देवता के नाम के साथ-साथ स्थान का भी उल्लेख किया है जैसे ''ओगुनूतुल नरसिंहुडा।'' यह ओगुनुतल कडपा जिले में स्थित नरसिंह के प्रति है।

प्रणय कलहांतिरता, स्वकीया, मध्या (धीरा) ज्येष्ठा (धीरा), प्रकीया, स्वाधीन पतिका आदि नायिकाएँ तथा दक्षिण, शठ आदि नायकों का चित्रण इन संकीर्तनों में है।

द्विपदः

प्रस्तावनाः ''द्विपद'' नाम से विख्यात दो चरणों का गीत तेलुगु छन्दों की जननी मानी जाती है। अर्थात् यह तेलुगु भाषा का अत्यन्त प्राचीन छन्द है। इस छन्द को तेलुगु साहित्य में वही स्थान और महत्व प्राप्त है जो हिन्दी क्षेत्र में ''दोहा'' छन्द को! दोहा छन्द की दीर्घ परम्परा अपभ्रंश से हिन्दी तक स्पष्ट है। पर द्विपद की परम्परा प्राचीन काल में इतनी स्पष्ट नहीं मिलती, पर अनुमानतः उसका प्रचलन रहा होगा।... जिस प्रकार दोहे के क्रम-विपर्यय से सोरठा का जन्म होता है, उसी प्रकार ''प्रास'' को हटा देने से मंजरी द्विपदा की सृष्टि हो जाती है। यदि इसके दो चरणों को सम्मिलित कर दिया जाए तो तरुवोजा छन्द के चार चरणों में से एक चरण की सृष्टि हो जाती है। तरुवोज छन्द से ही सीस, मध्याक्कर आदि लोक

छंदों की भी सृष्टि हुई। द्विपद में अन्त्यप्रास की योजना की जाए तो रगड़ा छन्द की सृष्टि होती है।

तेलुगु के सम्पूर्ण साहित्य का वर्गीकरण 'मार्ग' तथा 'देशी' संप्रदायों के अन्तर्गत है। मार्ग से तात्पर्य संस्कृत भाषा से प्रभावित साहित्य है तो देशी का सम्बन्ध प्रादेशिक साहित्य से है, जिस पर संस्कृत का प्रभाव न हो तथा जो अति स्वतंत्र तथा स्वच्छन्द रूप से विकसित हुआ हो। ''प्राचीन काल में यह द्विपद छन्द पंडितों का आदर न पा सकने के कारण राजाश्रय भी नहीं पा सका। अतः इस छन्द में ग्रंथों की रचना भी नहीं हुई। इसका विस्तृत उपयोग लोक गीतों में हुआ था जिनके माध्यम से ही उनका प्रचार तथा प्रसार हुआ था। अतः यह तेलुगु भाषा तथा तेलुगु छन्दों की जननी मानी जाती है। तरुवोज, मंजरी द्विपद, गीत, सीस पद्य आदि कई छन्दों का जन्म इसी द्विपद से होने की बात तेलुगु भाषा के विद्वान मानते हैं।''

''यह द्विपद छन्द केवल दो चरणों तक ही सीमित न होकर कई चरणों के काव्य भी होते हैं। इस छन्द की विशेषता यह है कि यह गाने, पढ़ने तथा कंठस्थ करने के लिए अत्यन्त सुलभ है।'' इसी सौलभ्य के कारण तेलुगु के अत्यधिक लोकगीत प्रायः इसी छन्द में बाँधे गये थे। कन्नड़ तथा तमिल के कुछ छन्दों से भी यह द्विपद छन्द थोड़ा बहुत मिलता जुलता है। इसमें 15 से 18 तक मात्राएँ हो सकती हैं। यह एक मात्रिक छन्द है।

इस छन्द में काव्य रचने का श्रेय भी सर्वप्रथम वीर शैव कवियों को ही प्राप्त होता है। इसे उन्होंने अपने धर्म के प्रचार तथा प्रसार के लिए अपनाया था। वीर शैव के प्रमुख तथा आदि कवि श्री ''पाल्कुरिकि सोमनाथ'' की रचनाएँ ''बसव पुराण'', ''पंडिताराध्य चरित्र'' आदि

इसी छन्द में हैं। वीर शैव कवियों ने जात-पाँत को मिटाने के लिए कठिन परिश्रम किया था। अतः जन मानस तक इस आन्दोलन को ले जाने के लिए द्विपद छन्द को ही उन्होंने प्रभावशाली माना। उनके पश्चात् अन्य कवि भी इस छन्द में काव्यों की रचना करने लगे।

वास्तव में द्विपद साहित्य का प्रसार तथा विकास ताल्लपाक के कवियों द्वारा ही सम्पूर्ण रूप से हुआ था। इन्होंने भी वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए ही प्रमुख रूप से इस छन्द में रचनाएँ की थी। अतः यह निष्कर्ष पर हम पहुँच सकते हैं - ''इस छन्द का उपयोग प्रमुख रूप से धर्म के गहरे प्रभाव के कारण मान सकते हैं। इसी साहित्यिक शैली में द्रविड़ तथा कन्नड़ भाषाओं में भी धार्मिक साहित्य का प्रचार हुआ था। प्रायः तेलुगु भाषा भाषियों ने भी उसे ही अपनाया था।'' श्री वेटूरि आनन्द मूर्ति जी ने द्विपद साहित्य के विकास को तीन उत्थानों में माना है।

ताल्लपाक के कवियों का द्विपद साहित्यः

ताल्लपाक के कवियों में कई प्रसिद्ध द्विपद कवि थे। इस वंश के मूल कवि स्वयं अन्नमाचार्य, उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य तथा पौत्र चिन्नन्ना को उच्च स्थान दिया जाता है। इन्होंने द्विपद छन्द में विभिन्न काव्य वस्तुओं को लेकर सुन्दर भाव पक्ष तथा कला पक्ष के उदाहरण प्रस्तुत किए। ताल्लपाक के कवियों ने द्विपद के लक्षणों का भी स्पष्ट निर्देशन किया था। तब तक द्विपद के लक्षणों पर कुछ ग्रन्थ लिखे नहीं गये थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक आधार लेकर अपने काव्यों को अत्यन्त सरस तथा आकर्षक बनाया था। अपने पूर्वजों का अनुसरण करते हुए भी इनकी रचनाएँ स्वतंत्र तथा विशिष्ट मानी जाती हैं।

(1) **अन्नमाचार्यः**

द्विपद रामायणः चिन्नन्ना ने अपने अन्नमाचार्य चरित्र में लिखा है कि अन्नमाचार्य ने ''आकर्षक तथा नव्य रूप'' से रामायण को द्विपद छन्द में रचा था। दुर्भाग्य से आज उनका द्विपद रामायण अप्राप्य है।

(2) **अन्नमाचार्यः**

इनकी द्विपद रचनाएँ हैं - 1. हरिवंश 2. श्रीवेंकटेश्वर प्रभात स्तवमु।

हरिवंशः वैष्णव धर्म के मूल ग्रंथ रामायण तथा हरिवंश हैं। अन्नमाचार्य ने रामायण की रचना की तो उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य ने हरिवंश की रचना की। इनका उल्लेख भी चिन्नन्ना कृत ''अष्ट महिषों कल्याण'' में है। किन्तु यह भी आज अप्राप्य है।

श्री वेंकटेश्वर प्रभात स्तवमुः पेदतिरुमलाचार्य की इस कृति में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन श्री बालाजी के प्रति प्रभाती गीतों के रूप में है। यह एक लघु रचना है। इसमें कुल 63 द्विपद हैं। भगवान विष्णु जब योग निद्रा में रहते हैं, तब ब्रह्मा आदि देवता आकर प्रभाती गीतों को गाते हैं।

''वसुदेव देवकी वरगर्भजात-किसलयाधार मेल्कोनुमु।
तपमु पेंपुन यशोदा नंदुल्कुनु-गृपतो शिशुवैन कृष्ण मेल्कोनमु।''

इसमें प्रभाती गीतों की परम्परा, संस्कृत तथा द्रविड़ भाषाओं से चली आ रही है। अतः तेलुगु भाषा के विद्वान इस रचना पर उन

परम्पराओं का प्रभाव मानते हैं। शायद इन गीतों को मंदिर में प्रातः काल गाया जाता था।

(3) चिनतिरुवेंगलनाथः

(4) अन्नमाचार्य के पौत्र चिनतिरुवेंगलनाथ उपनाम ''चिन्नन्ना'' द्विपद काव्य लिखने में अत्यन्त प्रसिद्ध थे। कहा जाता है - ''चिन्नन्न द्विपद केरगुनु'' अर्थात् चिन्नन्ना को ''द्विपद का पर्यायवाची'' मान सकते हैं। पाल्कुरिकि सोमनाथ के पश्चात् चिन्नन्ना जैसे द्विपद छन्द के विशेष प्रेमी अन्य कोई नहीं मिलते हैं। अन्य शैलियों को न छूकर अपने सभी काव्यों को केवल द्विपद छन्द में ही रचकर उसके प्रति कवि ने अपना प्रगाढ़ प्रेम व्यक्त किया है। इनकी चारों कृतियाँ उच्च कोटि की हैं। ये सभी द्विपद छन्द में ही लिखी गयी हैं। वे हैं - 1. अष्ट महिषी कल्याणमु 2. उषा कल्याणमु 3. परमयोगि विलासमु और 4. अन्नमाचार्य चरित्रा। ये चारों ही कृतियाँ तेलुगु साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अतः उनका विस्तृत परिचय देना उचित होगा।''

अष्ट महिषी कल्याणमुः श्री वेटूरि आनन्दमूर्ति जी इसे चिन्नन्ना की प्रथम रचना मानते हैं। इसमें पांच परिच्छेद हैं। करीब-करीब 3683 द्विपद अर्थात् 7366 पंक्तियाँ हैं। इसे हम महाकाव्यों की कोटि में रख सकते हैं क्योंकि इसमें संपूर्ण कृष्ण चरित्र है, जिसका आधार भागवत पुराण है। ''इसके प्रथम चार परिच्छेदों में दशम स्कंध के अनुसार ही श्रीकृष्ण का जन्म, बाल लीलाएँ, दुष्ट संहार तथा अन्य लीलाओं का विस्तृत वर्णन है। शेष एक ही परिच्छेद में श्रीकृष्ण का अष्ट महिषियों से विवाहों का वर्णन शीघ्र गति से कर दिया है। उसमें भी केवल रुक्मिणी तथा सत्यभामा और जांबवती के

विवाहों का ही विस्तृत वर्णन है। इस ग्रंथ को कवि ने श्री वेंकटेश्वर की हृदय रानी अलमेल मंगा को समर्पित किया।'' तनिक इस कृति के बारे में देखें -

असुरों की बढ़ती हुई यातनाओं के कारण वसुधा भगवान विष्णु से प्रार्थना करती है। भगवान विष्णु शेष नाग के साथ वसुदेव तथा देवकी के गर्भ से जन्म लेते हैं। किन्तु कंस के भय के कारण उन्हें ब्रज में नन्द तथा यशोदा के पास वसुदेव छोड़ आते हैं। अशरीरवाणी के वचनों से डर कर कंस उन दोनों बालकों का संहार करने के लिए एक के बाद एक असुरों को भेजता है। किन्तु बलराम और कृष्ण ही उन असुरों का संहार कर देते हैं। पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, बकासुर, धेनुकासुर, केशी, चाणूर, कालिय तथा अन्त में कंस आदि कई राक्षसों का संहार कर लोक कल्याण की स्थापना कृष्ण करते हैं। इसमें जरासंध से युद्ध, द्वारकापुरी के निर्माण का भी वर्णन है।

गोप गोपियों के साथ कोलि, रासलीला आदि तथा बलराम का रेवती के साथ और कृष्ण की आठ कन्याओं के साथ विवाह सम्पन्न होना इसकी कहानी है। कवि की प्रतिभा इस विषय के वर्णन में अत्यन्त मुखर हो उठी है।

बच्चों के धीरे-धीरे बड़े होने का वर्णन कवि ने बालकों (राम तथा कृष्ण) की क्रीड़ाओं के साथ-साथ आगामी कार्यों की सूचना के साथ अत्यन्त चमत्कार पूर्ण रूप से दिया है।

सभी राक्षसों के वध का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है।

बाल क्रीडाओं के वर्णन में कवि ने सर्वत्र स्थानीयता को उचित रूप से निभाया है। ब्रज प्रदेश का, वहाँ की प्रजा का, उनके रीति-

रिवाजों का, रहन-सहन का जो वर्णन है वह तत्कालीन तेलुगु लोक जीवन का ही सजीव चित्रण माना जा सकता है।

इस काव्य में रुक्मिणी, सत्यभामा और जाम्बवती से विवाह वर्णन विस्तृत रूप में मिलते हैं। रुक्मिणी का संदेश पाकर कृष्ण का उसे ले जाना, श्यमंतक मणी की कथा, जाम्बवान से युद्ध आदि से कहानी संबंधित है। इन सभी विवाह संस्कारों का वेदोक्त होने का वर्णन कवि ने किया है। आज भी तेलुगु प्रदेश में ये संस्कार वैसे ही पाये जाते हैं जैसे-सेहरा बाँधना, वर-वधू को मधुपर्क पहनाना, जीरा और गुढ़ का मिश्रण एक दूसरे के माथे पर रखना (शुभ मुहुर्त) तथा मंगलसूत्र बांधना आदि-आदि। विवाह वर्णनों के साथ-साथ उस अवसर पर उपस्थित समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों का, उनकी वेष-भूषा, अलंकार, उनकी उपस्थिति से विवाह के अवसर पर उत्पन्न शोर गुल आदि का सजीव चित्रण पढ़कर पाठक का मन रम जाता है।

पश्चात् कालिंदी, मित्रविंदा, लक्षमणा, भद्रा और सत्यकीर्ती के साथ विवाहों का वर्णन संक्षिप्त है किन्तु तेलुगु प्रदेश के रीति-रिवाजों के अनुसार ही है। मित्रविंदा को स्वयंवर में श्रीकृष्ण पाते हैं, सत्यकीर्ती को सात बैलों को एक साथ बांध कर अपने शौर्य को प्रदर्शित कर विवाह कर लेते हैं। लक्षणा को, मत्स्य यंत्र का भेद कर पाणिग्रहण कर लेते हैं तथा भद्रा उनकी फुफेरी बहन ही है, अतः विवाह सम्पन्न हो जाता है।

इन सभी संस्कारों के पश्चात् श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों के साथ द्वारका पुरी में आनंद से दिन बिताते हैं। ग्रंथ के अंत में कवि इसकी फलश्रुति इस प्रकार कहते हैं -

''ई कृष्ण चिरतंबु नेव्वरु वन्न
वाकृच्चि तलचिनवरिकेल्लपुडु
चिरतरायुवुलु चिंतितार्थमुलु''

अर्थात् जो व्यक्ति यह ''श्री कृष्ण चरित'' (यद्यपि ग्रन्थ का नामकरण अष्ट महिषी कल्याण हैं) पढ़ते हैं, सुनते हैं या केवल स्मरण मात्र करते हैं, उन्हें पूर्ण रूप से आयु, सम्पत्ति आदि की विशेष वृद्धि होती है।

इस काव्य रचना का मूल स्रोत चिन्नन्ना की वैष्णव धर्म के प्रति अथाह भक्ति है। सर्वत्र उन्हें विष्णु के ही दर्शन होते हैं। वैष्णव धर्मावलम्बियों के वंश में जन्म लेकर, स्वयं परम वैष्णव धर्मावलम्बी होने के कारण काव्य भी वैष्णव भक्ति की धारा से ओत-प्रोत है। पाठक इसे पढ़, विष्णु भक्ति की नदी में गोते लगाते हैं। उनके काव्य में उपमाएँ भी वैष्णव धर्म के ही अनुकूल दी गई हैं। यथा कृति के आरम्भ में अपनी वंशावली देते हुए पेदतिरुमलाचार्य के पाँचों पुत्रों को पांच कल्प तरुओं से उपमा दी है। उनके अनुसार रुक्मिणी को ले जाते समय कृष्ण ऐसे प्रतीत हेते थे मानों अमृत कलश ले जाते हुए गरुड़। क्षीर सागर में स्थित विष्णु स्फटिक की पेटी में स्थित नीलमणि जैसे भा रहे थे। कृष्ण का सौंदर्य वर्णन करते हुए कवि भी गोपिकाओं की ही भांति अपने मनोनेत्र से उनके दिव्य सौंदर्य के दर्शन कर रम जाते हैं और अपनी सुधि खो जाते हैं। स्वामी के सौंदर्य के वर्णन में उन्हें थकान नहीं होती है। प्रकृति के कण-कण में स्वामी को पाना कितना महान है। कृष्ण के दिव्य सौंदर्य के वर्णन में कवि कई बार डूब जाते हैं।

कभी-कभी कृष्ण के वर्णन में समकालीन राजा महाराजाओं की छटा भी आ जाती है। श्री वेटूरि आनन्द मूर्ति जी कृष्ण के क्षत्रीय रूपी वर्णनों में तत्कालीन विजयनगर के महाराजा साक्षात् कृष्णदेवराय की मूर्ति का प्रभाव मानते हैं। यह स्वाभाविक भी है। काव्य की विशेषताओं में से प्रथम उल्लेखनीय यह है कि काव्य के आरम्भ में कवि की वंशावली का वर्णन होने के कारण काव्य का ऐतिहासिक महत्व अत्यधिक है। अन्नमाचार्य की जीवनी और रचनाएँ तथा उस वंश के अन्यों की रचनाओं का आधार इसकी आरम्भिक पंक्तियाँ ही हैं।

काव्य की दूसरी विशेषता द्विपद छन्द के लक्षणों का वर्णन है। तब तक द्विपद छन्दों की रचना तो हुई थी किन्तु उनके लक्षणों का स्पष्ट निर्देशन कहीं नहीं हुआ था। चिन्नन्ना ने इस काव्य के माध्यम से वह कमी पूरी कर दी। आज तक द्विपद छन्द के लक्षणों को जानने के लिए शोधार्थी इसे ही अपना आधार मानते हैं। अतः लक्षण ग्रंथों की भी विशेषताएँ इसमें सम्मिलित है।

माना जाता है कि चिन्नन्ना के इस काव्य पर तेलुगु के अन्य प्रसिद्ध कवि पोतना (आंध्र भागवत) एर्रना, (हरिवंश) नन्नेचोड़ (कुमार सम्भव) तिक्कना (निर्वचनोत्तर रामायण तथा महाभारत) पाल्कुरिकि सोमनाथ, नाचन सोमना, पेद्दना आदि पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव है जिसने कवि की प्रतिभा में चार चांद लगा दिये हैं। चिन्नन्ना का यह काव्य अत्यन्त मनोहर रूप से सुसज्जित है।

उषा कल्याणमुः करीब 990 द्विपदों की यह एक लघु कृति है जिसका उपनाम ''उषा परिणयमु'' है जिसे कवि ने अलमेलमंगा को

समर्पित किया है। कवि ने इसकी रचना हरिवंश के आधार पर करने का उल्लेख किया है। रचना का आरम्भ अलमेलमंगा, शारदा, गौरीशंकर की प्रार्थना से होता है।

शोणितपुर का राजा बलि का पुत्र बाणासुर था। एक दिन उसने अपने द्वारपाल बने परमशिव से युद्ध करने की इच्छा व्यक्त की। शंकर ने कहा, ''जिस दिन तुम्हारा ध्वज टूट कर अपने आप पृथ्वी पर गिर जायेगा, उस दिन इस समस्त भूमंडल को जीतने वाले महान योद्धा से तुम्हारी लड़ाई होगी। वह तुम्हें ही नहीं हमें भी जीत लेगा।'' यह वर पा कर वाणासुर संतुष्ट हो जाता है किन्तु उसका मंत्री संदेह प्रकट करता है कि तुम्हारे पिता को (बलि) एक ही कदम में पाताल में गिरा दिया था, क्या उस हरि से तुम युद्ध कर सकते हो? ठीक इसी समय ध्वज अपने आप गिर जाता है। दुःशकुन भी होने लगे जिसे देख मंत्री चिंतित होने लगा। किन्तु बाणासुर सुरापान में मग्न हो गया था।

बाणासुर की पुत्री उषा अत्यन्त सुन्दरी थी। उसने जगन्माता पार्वती से वरदान पाया था, ''कामदेव से भी सुन्दर युवक जिसे तुम अपने स्वप्न में वैशाख मास के द्वादशी के रात को देखोगी, उसे ही अपने पति के रूप में पाओगी।'' एक रात वीणा वादन सुनते हुए नींद में डूबी उषा, पार्वती के वचनों के अनुसार ही एक मन मोहक मन्मथाकार युवक से स्वप्न में मिलती है। उसके प्रति प्रीति जग जाती है और उस युवक से विवाह करना चाहती है। उसकी सखी चित्रकला उसे धीरज देती है कि यह कार्य चाहे कितना भी कठिन क्यों न हो, किन्तु मैं साकार करूँगी। अपने नाम को सार्थक करती हुई चित्रकला, सुर, नर, किन्नर आदि पुरुषों के रेखा चित्र खींचती है। उन चित्रों से

उषा श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को देख, उसे पहचानती है कि यही मेरा प्रेमी है। अब चित्रकला नारद मुनि की सहायता से तापसी विद्या के द्वारा अनिरुद्ध को उसके शयनागार से शय्या साहित लाकर उषा के सामने प्रस्तुत करती है। जागने पर अनिरुद्ध अपने आप को इस अपरिचित वातावरण में पाता है और विस्मय के साथ-साथ उल्लास में भी डूब जाता है। बाणासुर यह सब जानकर उषा सहित अनिरुद्ध को कारागार में डाल देता है।

इधर अनिरुद्ध को द्वारका में परिवार के सदस्य ढूँढने लगते हैं। पर नारद विषय की जानकारी देते हैं। अब कृष्ण अपनी सेना के साथ शौणपुर पर आक्रमण कर वाणासुर तथा शिव की सेना से भीषण युद्ध करते हैं। अंत में बाणासुर के शरण में आने पर कृष्ण उसे क्षमा कर देते हैं। उषा तथा अनिरुद्ध का विवाह वैभव से सम्पन्न हो जाता है। स्थूल रूप से इस ग्रन्थ का कथानक यही है।

चिन्नन्ना के इस कथा के कथन में औचित्य का पूर्ण रूप से पालन हुआ है। जैसे चन्द्रलेखा का वेश बदल कर द्वारका पहुँचना, वहाँ नारद से भेंट होना, फिर तापसी विद्या के द्वारा अनिरुद्ध को लाना - ये सभी घटनाएँ एक शृंखला में बंधे हुए परिणाम श्रम के आधार पर होती हैं जो अत्यन्त सहज है। उसी प्रकार नायक तथा नायिका के चरित्र चित्रण में भी उन्होंने किसी प्रकार से अनौचित्य (कथोपकथन या वातावरण) को नहीं आने दिया है।

कवि की कुशलता का उदाहरण देखिए - ''चित्रलेखा द्वारा चित्रित यादव वीरों के चित्रों को उषा देखती है। पहले बलराम को देख कर मन में शंका उत्पन्न होती है। कृष्ण को देख और अधिक

होती है, फिर प्रद्युम्न को देख वह वही है (जिसे स्वप्न में देखा था) या नहीं, इस संदेह में डोलायमान की स्थिति में रहती है। अन्त में अनिरुद्ध का चित्र पार कर हर्षोल्लास पाती है कि यह वही युवक है जिसका मुझे स्वप्न में साक्षात्कार हुआ था। प्रेम में विवश हो जाती है। ''इस प्रकार के वर्णन से कवि उषा की उत्सुकता के साथ-साथ पाठकों की भी उत्सुकता को अन्त तक निभाने में सम्पूर्ण रूप से सफल हुए हैं।''

चिन्नन्ना ने मूल हरिवंश का आधार लेते हुए भी उसे स्वतंत्र रूप से घटा - बढ़ाकर घटनाओं को, वर्णनों को अत्यन्त रोचक बनाया है।

इस रचना में भी भगवान विष्णु के प्रति अपनी भक्ति का प्रदर्शन कवि ने किया है। इसमें शिव के सैनिक ही नहीं बल्कि स्वयं भगवान शंकर भी विष्णु की प्रार्थना तरह-तरह से करते हैं। भगवान शंकर निम्नलिखित स्तोत्र में कृष्ण के विभिन्न अवतारों का गान इस प्रकार करते हैं -

''मलसि ब्रह्मनु गाव मत्स्यंबु वैतिवलनाडु
कृष्णुडवैतिवि नेडु
जलधि गट्टग रामचंद्रुड वैतिवानाडु
कृष्णुड वैतिविनेडु।''

अर्थात् ब्रह्मा की रक्षा करने के लिए पहले तुम मत्स्य बने थे, आज कृष्ण हो। उसी प्रकार सेतु के निर्माण के लिए राम तथा हैहय वंशजों के नाश के लिए भागर्व राम बने थे। इस प्रकार से स्तुति में विभिन्न अवतारों का वर्णन है।

अन्य स्तोत्रों में भगवान के विभिन्न कल्याणकारी गुणों का वर्णन है। जैसे लक्ष्मी सहित हे विष्णु! तुम सर्वत्र व्याप्त सगुण एवं निर्गुण भी हो। इसी प्रकार कृष्ण तथा अन्यों के चित्रों का वर्णन करते हुए भी कवि अपनी तन्मयता तथा प्रपत्ति को दिखाते हैं। प्रत्येक स्थान पर कवि का वैष्णव धर्म के प्रति पक्षपात स्पष्ट है। विष्णु ही नहीं उनके सुदर्शन चक्र, गदा, गरुड़ आदि के वीरता के वर्णन के साथ कवि स्वयं भी तन्मय हो जाते हैं। उषा तथा अनिरुद्ध का विवाह तेलुगु भाषाभाषियों की शैली का विवाह वर्णन है। साथ ही इसमें चित्रलेखन, नाट्य, संगीत आदि में कवि के विस्तृत ज्ञान का परिचय मिलता है।

परमयोगि विलासमुः चिन्नन्ना की यह श्रेष्ठ रचना है। यह एक विशाल काव्य है जिसमें कवि की वैष्णव भक्ति के साथ अन्य कई विशेषताएँ भी उमड़ आयी हैं। ''6377 द्विपद छन्द अर्थात् 12754 पंक्तियों में इसमें कवि ने बारह आलवार तथा आचार्यों का पुण्य कथन किया है। वैष्णव धर्म के प्रचार का पुरुषार्थ भी इस परमयोगिविलास की रचना से कवि चिन्नन्ना ने प्राप्त किया है।''

इस ग्रंथ को कवि ने भगवान वेंकटेश्वर तथा अलमेल मंगा को समर्पित किया है। माना जाता है कि स्वयं वेंकटेश्वर, वैष्णव रूप धारण कर चिन्नन्ना के स्वप्न में प्रकट हुए। भगवान ने वैष्णव गुरु परम्परा के महान आचार्यों की कहानियों को ग्रंथस्थ करने का चिन्नन्ना से अनुरोध किया। वैष्णव गुरु परम्परा की महानता को चित्रित करनेवाले द्रविड़ ग्रंथ का आधार लेकर कवि ने अपनी कुशलता से विशुद्ध तेलुगु में इस कृति की रचना की है। इस काव्य की विशेषता संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कह सकते हैं - ''प्रस्तुत काव्य आलवार तथा आचार्यों की जीवनी, उनकी रचनाएँ, उनके संदेश,

कहीं-कहीं उनकी रचनाओं के अनुवाद आदि मिलाकर मानों वैष्णव धर्म की एक निधि है। यह वैष्णव धर्म का श्रेष्ठ ग्रंथ है। साथ ही देशी तेलुगु के स्वच्छ द्विपद छन्द में गेय जनप्रिय रचना है। इन सभी गुणों के कारण मानों यह ग्रंथ वैष्णव धर्म का कोष ही बन गया है।''

प्रथम परिच्छेदः काव्य के आरम्भ में कवि ने परम्परा के अनुसार भगवान बालाजी, लक्ष्मी, भूदेवी, शंख, चक्र, खड्ग आदि का भक्तिपूर्वक वर्णन किया है। साथ ही कवि ने विस्तार रूप से विष्णु भक्त गरुड़ तथा विश्वक्सेन, अपने पिता, पितामह, आचार्य तथा अन्य वैष्णव आचार्य-रामानुज आदि का भी भक्ति के साथ स्मरण किया है। प्रथम आलवार का जन्म काँची क्षेत्र के वरदराज स्वामी के मंदिर के तालाब में सोने के रंग के कमल से भगवान विष्णु के पांचजन्य अंश से हुआ था। देवतागण ने फूल बरसाये। ''हरि का जन्म देवकी के गर्भ से जब हुआ था, उसी प्रकार की चारों ओर प्रसन्नता छा गयी थी।'' इनके पालन पोषण का भार स्वयं लक्ष्मी नारायण ने उठाया था तथा आज्ञा दी कि-हे बालक! तुम इस संसार के जीवों को वैदिक मार्ग पर चलाना। हम तुम्हारी सहायता करेंगे। योगी भगवान की इस आज्ञा का पालन करने देश की यात्रा करने चले गये थे।

इनके जन्म के दूसरे तथा तीसरे दिन क्रमशः भूतत्ताल्वार तथा महदाह्वाय मुनि का जन्म कौमोदकी (गदा) तथा नंदक (तलवार) अंशों से हुआ था। इन्हें भी विष्णु तथा लक्ष्मी ने ही पालन-पोषण के साथ-साथ आत्म विद्या का ज्ञान भी दिया था। वे तीनों एक दूसरे की खोज में सारे देश का भ्रमण करते हैं तथा भारी वर्षा की रात अंधकार में उनका मिलन संयोग से हो जाता है। भगवान विष्णु के दर्शन पा कर आशु रूप से प्रत्येक आलवार ने सौ-सौ पद्यों के अंत्यिद से स्तुति

की। ये स्तुतियाँ आज भी दक्षिण में बड़ी भक्ति से मंदिरों में गायी जाती हैं।

''इन तीनों आलवारों ने क्रमशः पांचजन्य, कौमौदकी तथा नंदक अंशों से जन्म लिया था। इनमें शंख सात्विक, गदा तामस तथा खड्ग राजस गुणों के प्रतीक हैं। इसी प्रकार उनका पीत वर्ण के कमल, नीलोत्पल तथा रक्तोत्पल से जन्म लेना भी क्रमशः त्रिगुण के ही प्रतीकत्व का परिचायक है। भगवान का साक्षात्कार करने के लिए प्रथम योगी ने भक्ति, द्वितीय ने ज्ञान तथा तृतीय ने आत्मसमर्पण का मार्ग लिया है। प्रथम दोनों से अधिक तन्मयता तीसरे योगी को प्राप्त हुई थी जिसे ''प्रपत्ति'' मार्ग कह सकते हैं, जिसके द्वारा ही जीव परमात्मा को पा सकता है।''

द्वितीय परिच्छेदः भार्गव मुनि की घोर तपस्या के कारण स्वर्गलोक तक अग्नि की ज्वालाएँ फैल जाती हैं। अतः भयभीत हुए इन्द्र अप्सरा को भेजते हैं। वह मुनि को आकर्षित कर उनके द्वारा एक पुत्र को सुदर्शन चक्र के अंश में जन्म देती है, पश्चात् अप्सरा स्वर्गलोक तथा मुनि यात्रा करने चले जाते हैं। अतः बालक एक हरिदास नामक व्यक्ति के पास बढ़ने लगता है तथा कई महिमाएँ भी दिखाने लगता है। यही बच्चा कालान्तर में 'भक्तिसार योगि' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। भक्तिसार योगि की महिमा के कारण एक वृद्ध दम्पति को पुत्रोदय होता है। पश्चात् ''कणिकृष्ण'' के नाम से भक्तिसार योगी बालक का ही शिष्य बन जाता है। इन गुरु शिष्य की महिमाओं के सम्बन्ध में कई कथाएँ इसमें मिलती हैं। इन्होंने वैष्णव धर्म से सम्बन्धित कई रचनाएँ भी की। उनके गायन के साय वैष्णव धर्म का प्रचार करते हुए दोनों गुरु-शिष्य सारे देश का भ्रमण करते

हैं। सुदर्शन चक्र की ही भांति ये आलवार भी देश का भ्रमण करते हुए संसार के दोषों को मिटा कर, अपनी महिमा से सभी लोगों को अपने वश में लाते हैं, उन व्यक्तियों को स्वामी का साक्षात्कार करवाते हैं। इनकी जीवनी से हम इस तथ्य पर पहुँच सकते हैं कि-जाति से अधिक भगवद भक्ति तथा भागवतोत्तमों की भक्ति ही श्रेष्ठ है। भक्तिसार योगी की रचनाएँ शठ गद्य हैं। उनकी भक्तिपूर्ण स्तुति के कारण भगवान विष्णु उन्हें दर्शन देते हैं। विष्णु के दिव्य सौंदर्य का उन्होंने विस्तृत वर्णन किया है।

तृतीय परिच्छेदः इसमें नम्माल्वार, कुल शेखर आल्वार, मधुरकवि आल्वार और तिरुप्पाणाल्वारों की कथाएँ हैं। आल्वारों में नम्माल्वार अत्यन्त महिमान्वित माने जाते हैं। विश्वक्सेन के अंश से इनका जन्म हुआ था जिन्हें ''शठगोपयति'' भी कहा जाता है। सूतिका गृह में स्वयं हरि से ज्ञानोपदेश पाने का सौभाग्य उन्हें मिला था। उन्हें एक तिन्त्रिणी वृक्ष के नीचे रख दिया गया था जहाँ वे योगावस्था में ही षोड़श वर्ष तक रहे। इन्होंने भी भगवान विष्णु पर कई रचनाएँ की। इनकी प्रमुख रचनाएँ ''द्रविड़ वेद'' माने जाते हैं। दक्षिण देश के वैष्णवों ने इनकी ही रचनाओं को अधिक संख्या में ग्रहण किया है जो गुण में ही नहीं वरन् संख्या में भी अधिक मात्रा में हैं। ''साधारण भक्तों को ये रचनाएँ भाव प्रेरक तथा ज्ञानियों को वेद, गीता और भगवत का सार प्रतीत होती हैं।'' जन्म लेते ही विष्णु पर मधुर कविता का गान करने के कारण ''मधुर कवि आलवार'' नाम से प्रसिद्ध हुए एक और आलवार नम्माल्वार के शिष्य थे। ''मधुर कवि आल्वार की कविता गुलाबजल की तरह शीतल, कपूर की भांति सुगंधित तथा अमृत जैसी मधुर थी'' इन्होंने वेदार्थों का अनुवाद तथा अपने गुरु की प्रशंसा में

भी रचनाएँ की। गुरु-शिष्य ने अपना शेष जीवन हरि ध्यान तथा संकीर्तन में ही बिता दिया। इनकी जीवनी भी कुल गोत्र का नहीं किन्तु भक्ति की महानता को ही घोषण करती है। भगवद्-भक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण नम्माल्वार में है तो गुरुभक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण मधुर कवि आल्वार में हैं। इनकी और कथाएँ, रचनाएँ भगवद् भक्ति से भी गुरु भक्ति को महानता की घेषणा करती हैं। भगवान को इस कलियुग में संकीर्तन सेवा ही प्रिय है तथा उसी सेवा से भक्त भवसागर पार कर सकते हैं।.... वैष्णव भक्ति साहित्य के प्रचार रूपी यज्ञ में ये प्रजापति थे।

कुलशेखर आल्वार केरल के राजा थे। भगवद् भक्ति में अनुरक्त इस राजा ने ऐहिक बंधनों के साथ राज्य को भी त्याग दिया था। इनका जन्म वैष्णव भक्त राजा के यहाँ उसी प्रकार हुआ था, जिस प्रकार दशरथ के घर राम हुए थे। ये कौस्तुभ अंशज थे। ये ''सियाराम'' के भक्त थे तथा इन्होंने उनका साक्षात्कार भी पाया। श्रीराम तथा वेंकटेश्वर की जो स्तुतियाँ इन्होंने की वे ''द्रविड़ काव्य'' के नाम से विख्यात हैं। इन्होंने राम साक्षात्कार पर सम्पूर्ण रामकथा का गान किया। कुलशेखर आल्वार की भक्ति पर विशेष प्रसन्न होकर भगवान विष्णु स्वयं उन्हें वैकुण्ठ लेने आये थे। इनकी भी जीवनी भगवद् भक्ति के साथ भागवतों की भक्ति की श्रेष्ठता की घोषणा करती है। अपने जीवन को अंत तक इन्होंने हरि भक्तों की पूजा में ही बता दिया था।

तिरुप्पाणाल्वार श्रीवत्सांशज थे। ये वीणा वादन के साथ विष्णु के संकीर्तन करते थे। इन्होंने शास्त्रीय ढंग से श्रीरंगनाथ के चरण, चक्र, अधर, नयन, कमल, देह सौन्दर्य आदि का गान तन्मयता से

किया था, जिसे द्राविड़ प्रबन्ध माना गया है। इनकी रचनाओं की असंख्य व्याख्याएँ की गई हैं। ''वेदान्त देशिक ने इस काव्य के प्रत्येक शब्द की व्याख्या करते हुए भी संतृप्त न होकर प्रत्येक कविता के लिए एक-एक श्लोक की रचना की। उनकी इस रचना को ''भगवात् ध्यान सोपान'' की संज्ञा दी गयी है। इनकी जीवनी भी यही विवरण देती है कि भगवान का ध्यान ही मोक्ष प्रदायक है, जिसमें भगवान के चरण ही प्रथम सोपान हैं। भगवान को गान तथा संकीर्तन सेवाएँ ही विशेष प्रिय हैं। इस प्रकार भक्ति में तन्मय जीवन व्यतीत कर ये धन्य हुए।'

चतुर्थ परिच्छेदः इसमें ''विप्रनारायण'' के नाम से विख्यात ''तोंडरप्पोडियाल्वार'' की जीवनी है। नारायण के अनुग्रह से विप्र के घर वनमालिका अंश से इनका जन्म हुआ। ये माता के गर्भ में ही सकल शास्त्रों के प्रवीण हो गये थे। कावेरी नदी के किनारे सुन्दर उपवन के फल-फूलों से स्वामी रंगनाथ की सेवा में मग्न रहते थे। भगवान की लीला के कारण एक वेश्या के मोह में पड़ कर भी अन्त में पश्चाताप के कारण मुक्ति पाते हैं। ''वनमालिका'' तथा ''प्राबेधकी'' इनकी रचनाएँ हैं। इनकी जीवनी मानव के क्षणिक दोषों का भगवान से क्षमा किये जाने का उदाहरण है। ''मालाकैंकर्य'' भगवान को अत्यन्त प्रिय है जिसका श्रेष्ठ उदाहरण विप्रनारायण की जीवनी है। भगवान के साक्षात्कार पर इन्होंने अपने आपको हरि भक्तों की चरण धूलि बनने की प्रार्थना की थी। अतः ये ''भक्तांघ्रिरेणु'' के नाम से भी विख्यात हुए।

पंचम परिच्छेदः विष्णुचित्त तथा गोदादेवी की कथाएँ क्रमशः इस परिच्छेद में हैं। ऐसी मान्यता है कि श्री विलल्लतपुत्तूर तीर्थ के

वटपत्र शायी कृष्ण के परम भक्त पेरयाल्वार ने गरुड़ अंश से जन्म लिया था जिनका उपनाम विष्णुचित्त था। यज्ञों से भी अधिक प्रभावशाली माला कैंकर्य को मान कर इन्होंने भगवान को विभिन्न प्रकार के पुष्पों की मालाएँ गूँथ कर समर्पित करने में अपना जीवन बिताया। भगवान के अनुग्रह के कारण पांड्य राजा के राजदबार में (शास्त्रज्ञान न होते हुए) विष्णु की महानता को तर्क संगत इन्होंने स्थापित किया था। इस प्रकार इन्होंने ज्ञान से भक्ति की महानता को घोषित किया। इनकी रचनाएँ हैं - ''मंगलाशासन'' तथा ''पेरियाल्वार।'' ये 'तिरुमोजि' के नाम से जाने जाते हैं।

आंडालः आंडाल के नाम से विख्यात गोदा देवी पृथ्वी का ही अवतार मानी जाती हैं। गोदा अपने पिता विष्णुचित्त को तुलसी के वन में प्राप्त हुई थीं। आकाशवाणी से इनके जन्म का कारण बताया गया था कि विष्णु को माला कैंकर्य सेवा करने के लिए भूदेवी ने ही इस प्रकार से जन्म लिया है। विष्णुचित्त अत्यन्त प्यार से इस कन्या को घर ले जाते हैं तथा पालन पोषण करते हैं। कन्या को भी बचपन से ही कृष्ण के प्रति इतनी भक्ति थी कि उन्हें सुलाने के लिए ''लोरियाँ'' भी कृष्ण को सम्बोधित करके गाने पड़ते थे। वे कृष्ण के गीत सुन, खिलखिला कर हंस पड़ती थीं। गोदा देवी की आयु के साथ-साथ उनके हृदय में कृष्ण की प्रीति भी बढ़ती गयी। भगवान के समर्पण हेतु बनायी मालाओं को स्वयं पहन कर विशेष आनन्द पाती थीं। अनजाने में विष्णुचित्त इन्हीं मालाओं को भगवान को समर्पित करते रहे। एक दिन पिता गोदा के गले में हार देख चिंतित हुए। दूसरी बना कर भगवान को पहनाते हैं तथा अपने इस अपराध की क्षमा याचना करते हैं। किन्तु भगवान को यह दूसरी माला पसन्द नहीं आती

हैं। अतः वे कहते हैं कि ''जो माला तुम्हारी पुत्री नहीं पहनती है, वह मुझे पसन्द नहीं आती'' और गोदा से विवाह करने का वादा करते हैं। कृष्ण चरित्र सुन-सुन गोदा देवी ने ''तिरुप्पावै'' तथा ''नाच्चियार तिरुमोशि'' की रचनाएँ की थीं जिनमें भगवद् विरह का वर्णन है। तिरुप्पावै अत्यन्त मधुर रचना है। इसे साहित्य और संगीत प्रेमी चाव से पढ़ते और गाते हैं। दक्षिण के मंदिरों में तिरुप्पावै का गान विशेष रूप से धनुर्मास में गाया जाता है। गोदा देवी विष्णु से विवाह कर श्रीरंगम चली जाती हैं। (विजयनगर के प्रसिद्ध राजा श्रीकृष्णदेव राय से भी श्री रंगेश तथा गोदा देवी की कथा लेकर ''आमुक्त माल्यदा'' या ''विष्णुचित्तीय'' नामक सुन्दर काव्य की रचना की है। इसका तेलुगु साहित्य के प्रबन्ध काव्यों में विशेष स्थान है।)

आंडाल की कहानी मधुर भक्ति की श्रेष्ठता घोषित करती है। ''परमात्मा से मिलने के लिए जीव को स्वयं नायिका बन, स्वामी को प्रेम से, भक्ति भाव से दिव्य श्रृंगार की स्थिति में पहुँच कर संयोग से तादात्म्य की अनुभूति पानी चाहिए। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों को समझने के लिए गोदादवी की कथा भी वैसी ही है जैसे वेदों को समझने के लिए पुराण तथा इतिहास।''

षष्ठ तथा सप्तम् परिच्छेदः इनमें ''तिरुमंगैयाल्वार'' की कथा है। विष्णु के धनुष के अंश में इनका जन्म हुआ था। ''चतुर्विध कतित्व स्वामी'' की उपाधि इन्हें प्राप्त थी। सामान्य शूद्र वंश में जन्म लेकर इन्होंने भगवान की सेवा में अपना जीवन बिताया। यों वे तत्कालीन चोल राजा के मंत्री थे। एक बार भगवान की सेवा के लिए धनागार से धन व्यय करने पर राजा ने कुपित हो कर इन्हें राज्य से निर्वासित कर दिया। अतः इन्होंने हरि सेवा के ही हेतु चोर वृत्ति आरम्भ की।

इसी समय भगवान ने दर्शन दे कर अष्टाक्षरी का उपदेश दिया। भगवान के दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार पा कर इन्होंने एक सहस्र से भी अधिक भक्ति स्तोत्रों की रचना की। इनकी अन्य रचनाओं में भगवान को नायक तथा जीव को नायिका बना कर विरही नायिका का चित्रण किया गया है। सभी आल्वारों में इनकी ही रचनाएँ सबसे अधिक मात्रा मे हैं। केवल नम्माल्वार को ही इनके समकक्ष बिठाया जा सकता है। वैष्णव संप्रदायी नम्माल्वार की रचनाओं को चार वेद मानते हैं तो तिरुमंगैयाल्वार की रचनाओं को वेदांग। इनकी जीवनी मन की स्वच्छता की घोषणा करती है।

अष्टम परिच्छेदः चिन्नन्ना ने इस विशाल काव्य में बारह आल्वारों की कथाओं के साथ-साथ आचार्य पुरुष श्रीमन्नाथमुनि, यामुनाचार्य तथा श्री रामानुजाचार्य की जीवनी भी दी है, जिन्होंने वैष्णव धर्म को सुस्थिर बनाया था।

श्रीमन्नाथमुनि, प्रथम वैष्णवाचार्य के द्राविड़ प्रबन्ध (पाशुर) के काव्य सौंदर्य पर मुग्ध हुए और उसका प्रचार किया। ये स्वयं महान् गायक थे। उनका विश्वास था कि कठिन ज्ञान मार्ग की अपेक्षा इस प्रबन्ध के गीतों के द्वारा भगवान को सुलभ रूप से पाया जा सकता है। इन्होंने द्राविड़ प्रबन्ध को अपने गाँव में पढ़ने का प्रबन्ध किया था और अपने शिष्यों को सिखा कर, उसका विस्तृत प्रचार किया था। मान सकते हैं कि इनके ही कारण श्रीवैष्णव सम्प्रदाय को एक नई चेतना, नई स्फूर्ति तथा प्रचार मिला था। साथ ही एक नया युग भी आरम्भ हुआ। श्रीमन्नाथमुनि की एक रचना - ''योगरहस्य'' आज अप्राप्त है। दूसरी रचना ''न्यायतत्व'' अपने युग में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों का प्रथम ग्रन्थ माना गया है।

श्रीमन्नाथमुनि के पौत्र ''यामुनाचार्य'' ने स्वल्प आयु में ही गुरु से वेद-विद्याओं को प्राप्त कर लिया था। इन्होंने चोल राजा के राजगुरु को शास्त्र चर्चा में हराया। ''सिद्धित्रय'' ''श्री हरिस्तोत्र'', ''गीतार्थ संग्रह'' तथा ''महापुरुष निर्णय'' - इनकी कृतिया हैं। विष्णु का शरण पाकर प्रपत्ति द्वारा उनकी सेवा करने का वर्णन स्तोत्र रत्न का विषय है। वैष्णव धर्म के प्रचार के लिये इन्होंने 'महापूर्ण', 'श्री पूर्ण', 'गोष्ठीपूर्ण' तथा 'काँचीपूर्ण' नामक चार शिष्यों को देश के चारों ओर भेजा। इनकी जीवनी वैष्णव धर्म सिद्धान्तों के प्रतिपादन के साथ-साथ गुरुदेव की महानता, ज्ञान समुपार्जन के साथ-साथ योगाभ्यास की आवश्यकता का भी निरुपण करती है।

रामानुचार्य के ही वंशज तथा महापूर्ण के शिष्य ''रामानुजाचार्य'' वैष्णव धर्म के आधार स्तम्भ माने जाते हैं। इन्होंने अल्प आयु में ही देश के कोने-कोने में जाकर विद्वानों को तर्क-वितर्क में हराया था। तत्कालीन चोल-राजा ने हरिद्वैषी होने के कारण इन्हें कई यातनाएँ दी। अतः पदार्पण इन्होंने श्रीरंगम को छोड़ ब्रज प्रदेश में जहाँ उन्होंने भगवान् की प्रतिष्ठा कर वैष्णव धर्म को सम्पूर्ण भारत में फैलाने का प्रयत्न किया। सम्पूर्ण देश में इनके कई शिष्य थे। विशिष्टाद्वैत संप्रदाय के प्रवर्तक रामानुज की रचनाएँ - ''वेदान्त दीप'', वेदान्तसार, गद्यत्रय तथा ''गीता विवरण'' हैं, जिनके द्वारा वे कश्मीर के शारदापीठ में स्वयं शारदा देवी को प्रसन्न कर सके थे।

आल्वारों के भक्ति मार्ग के पश्चात् इन आचार्यों ने ज्ञान मार्ग का उपदेश प्रारम्भ किया था। ''आल्वार तथा आचार्यों के उपदेशों में कुछ अन्तर था। आचार्य पुरुष अपने उपदेशों का मूल केवल द्राविड़ ग्रन्थ ही नहीं, वरन् संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों से भी लेने लगे। इन्होंने

भक्ति के साथ-साथ ज्ञान तथा कर्म मार्गों की भी भगवान् की प्राप्ति के लिए उपाय माना। वेद, उपनिषद् तथा द्रविड़ ग्रन्थों का, एक प्रकार से समन्वय करने की चेष्टा करने के कारण इन्हें ''उभय दार्शनिक'' के नाम से जाना जाने लगा। इन्होंने आल्वारों को अपना मार्ग दर्शक माना। आल्वारों के ''दिव्य प्रबन्धम्'' को वेदतुल्य मानकर मंदिर तथा गृहों में पठनीय ग्रन्थ के रूप में गौरव मिला। आज वैष्णव धर्मावलम्बियों के सभी व्यावहारिक तथा लौकिक नियम जैसे पूजा-पाठ, त्यौहार, दान-धर्म, उपवास आदि इन्हीं से निर्धारित हुए। अतः वैष्णव सम्प्रदाय के लिये ये आचार्य अत्यन्त पूजनीय हैं।''

प्रधान रूप से वैष्णव धर्म के प्रचार की दृष्टि से चिन्नन्ना ने इस विशाल काव्य ग्रन्थ ''परम योगि विलास'' की रचना की। अन्त में कवि कहते हैं - ''इन योगीश्वरों का इतिहास केवल एक बार पढ़ने, सुनने, लिखने या स्मरण मात्र से ही कई प्रकार के सुख-सम्पति प्राप्त होंगे।'' सम्पूर्ण ग्रन्थ भक्तिरस पूर्ण है। इसके परमात्मा सम्बन्धी, वर्णन, स्तुति, भगवत् तथा भागवद् भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ वैष्णव धर्म के प्रति जिज्ञासा को उद्दीप्त करती हैं। इसमें ग्रन्थस्थ उत्तम कोटि के विचार, वर्णन कौशल तथा विविधतापूर्ण वर्णन इस काव्य के गौरव को बढ़ाते हुए कवि की द्विपद रचना सामर्थ्य को भी प्रभावित करते हैं।

अन्नमाचार्य चरित्रः पद कविता पितामह अन्नमाचार्य की सम्पूर्ण जीवनी का मुख्य आधार यही द्विपद काव्य है। स्वयं अन्नमय्या के पौत्र से रचित होने के कारण इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व बहुत अधिक है। चिन्नन्ना अपने पूर्ववर्ती काव्यों के अनुरूप

इसका भी आरम्भ अपने इष्टदेवता वेंकटेश्वर, अलमेलमंगा, शंख, चक्र आदि के स्तुति से करते हैं।

चूंकि अन्नमय्या की जीवनी पिछले अध्याय में इसी के आधार पर दी गयी है। अतः यहाँ उस काव्य के सौन्दर्य की कुछ झलकें प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

अन्नमय्या का जन्म ''ताल्लपाक गाँव में हुआ था जिसका सुन्दर चित्र कवि हमारी आँखों के सामने प्रस्तुत करते हैं। वहाँ चारों ओर लाल कमल से भरे तालाब, केवड़े के फूलों की झाडियाँ, रसदायी ईख तथा चारों ओर हरे-भरे खेत हैं। वहाँ के ब्राह्मण वेद-वेदांगों के पंडित हैं। वे गोविन्द की मूर्ति को देखते हैं। नारायण की कथा सुनते हैं, पूजा करते हैं, हरि चरणों का ही स्मरण करते हैं तथा केवल विष्णु प्रसाद ही उन्हें ग्राह्य है।''

प्रस्तुत ग्रंथ में अन्नमय्या की जीवनी, वंश, सन्तान, बाल्य, विद्याभ्यास, तिरुपति यात्रा, वहाँ के पुण्य स्थल, अलमेलमंगा तथा स्वामी का दर्शन, संकीर्तन रचना, राजानुग्रह तथा राजधिक्कार, कई महिमाएँ तथा पुरन्दरदास से भेंट आदि अनेक घटनाएँ वर्णित हैं। इस ग्रंथ की कलात्मकता के साथ-साथ ऐतिहासिकता का भी विशेष महत्व है। आज उनकी जीवनी के लिए यही आधार ग्रंथ है। ''इस रचना का आधार चिन्नन्ना ने अपने पिता पेदतिरुमलाचार्य के मुख से सुने वचन तथा संकीर्तन क्रमों को माना होगा। चिन्नन्ना के प्रायः बचपन में ही पितामह का स्वर्गवास हुआ होगा।''

द्विपद रचना में इतनी बहुमुखी प्रतिभा के ही कारण तेलुगु भाषा-भाषी चिन्नन्ना तथा द्विपद को अभेद्य मानते हैं।

मंजरी द्विपदः

प्रस्तावनाः ''मंजरी द्विपद'' की प्रत्येक पंक्ति अपने नाम को सार्थक करते हुए पुष्प गुच्छ की भांति भाव सौन्दर्य बिखेरती है। द्विपद छन्द के ही स्वल्प भेद से मंजरी द्विपद की रचना की गयी है जिसमें यति नियम है किन्तु द्विपद की भांति प्रास का नियम नहीं। ताल्लपाक के कवियों ने इस मंजरी द्विपद में भी रचनाएँ की हैं। प्रायः तेलुगु भाषा में स्त्री, बाल तथा वृद्धों के लोकगीत इसी छन्द में रचे गये हैं, क्योंकि इनमें गाने की सरलता है। अतः ताल्लपाक के कवियों ने भी प्रचार के माध्यम के रूप में इस मंजरी द्विपद छन्द को अपनाया।

ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँः

आज हमें इस छन्द में ताल्लपाक के कवियों की तीन कृतियाँ प्राप्त होती हैं। वे हैं -

1. श्रृंगार मंजरी 2. चक्रवाल मंजरी तथा 3. सुभद्रा कल्याणमु।

(1) श्रृंगार मंजरीः कर्ता ताल्लपाक अन्नमाचार्य। यह कृति मंजरी द्विपद में रचित होने के कारण तथा कृति का विषय दिव्य श्रृंगार वर्णन होने के कारण इसका नामकरण श्रृंगार मंजरी किया गया है। यह उनकी लभ्य लघु कृतियों में से एक है, जिसे अन्नमय्या ने वेंकटेश्वर को समर्पित किया है।

इसके नायक स्वयं वेंकटेश्वर तथा नायिका लक्ष्मी हैं। ग्रंथ का आरम्भ विस्तार से स्वामी के दिव्य सौन्दर्य वर्णन से हुआ है। सकल चराचर की आत्मा बनकर जो स्वामी मेरुपर्वत की भांति शोभायमान वेंकटाचल पर है - उसकी श्रृंगार तथा सौन्दर्य की ख्याति सुन एक

बाला (लक्ष्मी) विरह का अनुभव करने लगती है। अतः उसे उपशमन करने सखियाँ उद्यान ले जाती हैं। किन्तु हाय! वसंत का आगमन हो गया तथा सारा उद्यान मानो काम तथा रती के क्रीड़ा स्थल बन गये। अतः सम्पूर्ण वातावरण उस बाला के लिए उद्दीपन बन जाता है। नाना प्रकार के उपचारों से भी उसका शमन न कर सकने के कारण सखियाँ जाकर यह बात स्वयं वेंकटेश्वर से निवेदन कर, उन्हें वन केलि के लिए आह्वान देती हैं। यह सुनते ही नारियों को सम्मोहित करने वाले शृंगार के अधिपति वेंकटेश्वर उस बाला पर अनुग्रह करने ''गुलाब जल में नहाकर, पीताम्बर धारण कर, कस्तूरी तथा शिरीष पुष्पों से अलंकृत होकर'' गरुड़ वाहन पर चले आते हैं तथा उस बाला को उसकी विरहावस्था से मुक्त करते हैं।

कथा का अंश केवल इतना ही है। किन्तु शृंगार मंजरी में उसके नामकरण के अनुरूप शृंगार के कई चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। संक्षिप्त में इस लघु रचना की विशेषता इस प्रकार से कह सकते हैं - ''इसकी नायिका स्वकीया मुग्धा है। श्रवण के कारण विरह का अनुभव करती है। पश्चात् वन में वसंत ऋतु के प्रभाव से, शुक तथा पिक के आलाप, मंद-मंद समीर, ज्योत्स्ना आदि के कारण उद्दीप्त हो जाती है। अतः मन में रतिभाव का उदय होता है.... स्वामी से मिलन के पश्चात् रसानन्द की अनुभूति प्राप्त करती है।''

(2) शृंगार मंजरीः कर्ता ताल्लपाक पेदतिरुमलाचार्य ने इसे साधारण मंजरी द्विपद के स्थान पर विशेष चक्रवाल मंजरी में लिखा है। इसकी रचना पद्धति में कई नियम होने के कारण कवि ने शृंगार मंजरी के विषय को ग्रहण करते हुए अत्यन्त आलंकारिक, रसमय तथा चमत्कारपूर्ण सुन्दर सरस रूप में इसका सृजन किया है। इस

प्रकार की रचना केवल समर्थ कवि ही कर सकता है ''विभाव, अनुभाव'' आदि का पोषण करते हुए स्थायी भाव रति की प्राप्ति का चित्रण क्रमिक रूप से हुआ है।''

इसका प्रथम नियम यह है कि जिस शब्द से एक पंक्ति का अन्त होता है उसी शब्द से दूसरी पंक्ति का आरम्भ होना चाहिए। पेदतिरुमलाचार्य ने अपनी सम्पूर्ण रचना इसी नियम के आधार पर की है। जैसे -

''येलमावि मोत्तंबुलिनिचे बुन्नाग -
नागरंगा शोक नाग केसरक -
केसरकर वीर किंश कांकोल।''..........

साथ ही मंगल आदि, मंगल अन्त के अनुसार तथा चक्रवाल छन्द के अनुसार काव्य का आरम्भ ''श्रीललनाधारुजिन्मयाकारु कारुण्यवर्ति वेंकटगिरीमूर्ति.....'' तथा काव्य का अन्त 'गतियेन विष्णु मंगल महा श्री' से किया है। कवि स्वयं कहते हैं - कि इस काव्य की रचना मैंने ''नवचतुरता'' दिखा कर की है। शायद उत्सवों पर गाने के लिए कवि ने इसकी रचना की होगी। ''इसकी रचना का प्रधान उद्देश्य श्री वेंकटेश्वर की प्रशंसा करना है। सम्पूर्ण काव्य मुक्त पद ग्रस्त अलंकारों से युक्त है। शृंगार, विरह, सरःकेलि, वनकेलि आदि का वर्णन है। इस काव्य में कुछ चक्रवाल के लक्षण, कुछ मंजरी द्विपद के लक्षण होने के कारण इसका नामकरण चक्रवाल मंजरी किया गया है।''

(3) सुभद्रा कल्याणमुः इस काव्य के विषय में बहुत अधिक मतभेद होने पर भी अधिकतर प्रमुख विद्वान इसकी कवयित्री ताल्लपाक अन्नमाचार्य की प्रथम पत्नी तिम्मक्का को ही मानते हैं।

साथ ही उन्हें ही तेलुगु की प्रथम कवयित्री होने का श्रेय भी दिया जाता है। ग्रंथ के अन्त में कवयित्री स्वयं कहती हैं - ''अवनिलो ताल्लपाकान्नय्यगारि तरुणि तिम्मक्क चेप्पे'' अर्थात् ताल्लपाक अन्नमय्या की पत्नी तिम्मक्का ने सुभद्रा कल्याण की रचना शुद्ध तेलुगु में की है।

यह काव्य भी गाने योग्य लघु काव्य है। इसमें सुभद्रा तथा अर्जुन के विवाह की कथा वर्णित है। ग्रंथ का आरम्भ ही कथारंभ से है - नियम का अतिक्रमण करने के कारण अर्जुन का तीर्थयात्रा पर जाना, चित्रांगदा तथा उलूपि से विवाह, कपट योगी के वेष में द्वारकापुरी में जाकर सुभद्रा से विवाह करना! इस प्रकार महाभारत की कथा को ही ग्रहण किया गया है किन्तु चमत्कार के समावेश के साथ। इसकी नायिका सुभद्रा मुग्ध नायिका है।

तिम्मक्का ने कई स्थानों पर स्वतंत्र रूप से मनोहर वर्णन किये हैं। कपट यति के प्रति सुभद्रा के मन में कृष्ण, मोह उत्पन्न करने में सफल होते हैं। वाच्य रूप से उसके पराक्रम का वर्णन कर उसे अर्जुन ही सूचित करते है। सुभद्रा का तोता ही उन दोनों युवती-युवक के बीच संदेशवाहक बनता हैं। जब सुभद्रा अर्जुन के सम्बन्ध में उत्सुकता दिखाती है तो कपट मुनि प्रकट करता है - ''हे रमणी मेरे और अर्जुन के बीच किसी प्रकार का रहस्य नहीं। दिन रात तुम्हारी रूपरेखाओं के स्मरण के कारण उसके पलकों पर नींद ही नहीं आती।''

इस प्रकार के गूढ़ वार्तालापों के पश्चात् जब सुभद्रा अपने मन की बात कहती है, तब ही कपट मुनि अपने आपको अर्जुन के रूप में प्रकट करता है। इस प्रकार से कथा के प्रवाह में उत्साह के साथ-साथ औचित्य का भी पोषण है। कई स्थानों पर कवयित्री ने स्त्रियों के मनोविज्ञान के अनुकूल रचना की है। जैसे स्त्रियों को सजावट के

प्रति तथा आभूषणों के प्रति विशेष रुचि आदि के उदाहरण उनके विस्तृत वर्णनों में ले सकते हैं। एक अन्य स्थान पर द्रौपदी सुभद्रा को अर्जुन के पास भेजती हुई मन में व्यथा अनुभव करती है - संसार की सारी संपत्ति को चाहे अन्यों पर न्योछावर कर सकते हैं किन्तु पति को नहीं। यह प्रायः कवयित्री की मनोभावना ही मान सकते हैं क्योंकि उन्हें भी अक्कम्मा नाम की सपत्नी थी।

इस काव्य की विशेषता यह है कि अर्वाचीन काल में तेलुगु के कई प्रसिद्ध कवियों ने इनकी वर्णन पद्धति तथा भावों को ज्यों का त्यों अपना लिया है। कोमलता इस काव्य की एक और विशेषता है।

शतकः

प्रस्तावनाः सौ कविताओं का मुक्तक काव्य तेलुगु में ''शतक'' कहलाता है। तेलुगु भाषा में शतक साहित्य को एक विशेष स्थान है तथा अत्यन्त समृद्ध भी है। संस्कृत तथा प्राकृत की शतकों की परम्परा में ही तेलुगु के शतक भी आते हैं। सौ या सौ से अधिक मुक्तक कविताएँ जो प्रशंसा परक, नीति, शृंगार, वैराग्य आदि विषयों को लेकर एक टेक (मकुट) के साथ लिखे जाते हैं - उन्हें शतक कहते हैं। शतक का नामकरण मकुट के ही आधार पर किया जाता है। साथ ही शतक का छन्द भी प्रायः इसी टेक पर निर्भर करता है। हिन्दी में इस प्रकार के टेक का अभाव है।

शतकों का आरम्भ तेलुगु में प्रायः 12 वीं तथा 13 वीं शताब्दियों में शैव कवियों से हुआ।

तेलुगु के सर्वप्रथम शतक होने का गौरव पाल्लकुरिकि सोमनाथ कृत वृषपाधि शतक को प्राप्त होता है। अन्य कुछ पूर्ववर्ती शतक इस

प्रकार हैं - बसवलिंग शतक, (सोमनाथ) नीतिसार मुक्तावली (बद्देना) सर्वेश्वर शतक (यथावाक्कुल अन्नमय्या) अंबिका शतक (राविपाटित्रिपुरांतकुडु) आदि।

''तेलुगु में अन्य शतकों की अपेक्षा भक्ति शतकों की संख्या ही अधिक है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि तेलुगु में प्रमुखतः भक्त या संत कवियों ने अपने हृदयस्थ भक्ति, वैराग्य आदि की अभिव्यक्ति के लिए अथवा अपने धर्म के प्रचार के लिए शतक काव्य रूप को अपनाया।'' अपने - अपने धर्म प्रचार तथा प्रसार के लिए शैव तथा वैष्णव कवियों ने इसे अपनाया। समय की गति के साथ-साथ इसमें भी कई परिवर्तन होते गये। नीति, हास्य या भक्ति-किसी भी विषय पर शतक लिखी जा सकती है। वेमना के नीति परक शतक तेलुगु साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और अनमोल निधि हैं।

ताल्लपाक के कवियों का शतक साहित्यः

इसके सौंदर्य तथा उपयोग पर मुग्ध हो कर स्वयं अन्नमाचार्य के द्वारा ही 12 शतकों की रचना करने का उल्लेख मिलता है। ''शतकमुलु पदिरेंडु-सकल भाषलनु'' किन्तु आज केवल एक ही वेंकटेश्वर शतक प्राप्त है। यद्यपि अन्नमाचार्य चरित्रा में अलमेलमंगा शतक का भी उल्लेख है किन्तु वह भी अप्राप्य है।

(1) वेंकटेश्वर शतकः अन्नमय्या की यह एक भक्ति प्रधान रचना है। इसमें ''विष्णु तथा लक्ष्मी के दिव्य शृंगार वर्णन के साथ-साथ जीवात्मा-परमात्मा के संयोग का, प्रत्येक कविता में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों के अनुसार प्रतिपादन किया गया है।'' इस शतक की महान् विशेषता है कि ''इस शतक के कहने पर तिरुमल मंदिर के द्वार

अपने आप खुल गये, जिसे देख पुजारी भी आश्चर्य चकित रह गये। शतक को मंदिर में पुनः पठन करने से स्वयं स्वामी के गले का मुक्ताहार आ...गिरा'' सभी दर्शक गणों ने अन्नमय्या की महिमा को स्वीकारा। साथ ही उन्होंने शतक को ''नव्य काव्य'' की उपाधि भी दी।'' कवि की प्रतिभा यह है कि एक ही छन्द में वेंकटेश्वर तथा अलमेल मंगा दोनों के नामों के आधार पर कई स्थानों पर रहस्यात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करना।

''आतडे नीवु नीवेग नातडे नी पलुके तलपंगा
नातानि पल्कु नीहृदय मातडे पो अलमेलमंग नी
चेतिदे सर्व जंतुवुल जीवन मंतयु नंचु सन्मुनि
व्रातमु सन्नुतिंचु ननिवारण नीसति वेंकटेश्वरा।''

अर्थात् वेंकटेश्वर तथा अलमेलमंगा अभिन्न हैं। उनकी वाणी तुम्हारी है तो तुम्हारा हृदय उनका है। दोनों पृथक नहीं हैं। इस शतक की विशेषता के बारे में इस प्रकार कह सकते हैं - ''इस शतक का प्रत्येक पद नायक नायिका दोनों के दिव्य श्रृंगार का प्रतीक है। नायक नायिका में कभी अलगाव नहीं होता। तिरुमल क्षेत्र के श्रीनिवास का श्रृंगार रूप यही है कि लक्ष्मी (अलमेलमंगा) सदा उनके वक्षःस्थल पर ही निवास करती हैं। इसी कारण से पहाड़ पर (तिरुमल) लक्ष्मी का अलग से मंदिर भी नहीं है।'' श्रीनिवास का अर्थ ही श्री का निवास स्थान है। उनकी दिव्य श्रृंगार लीला ही प्रकृति का चैतन्य है जिनका मिलन तथा वियोग जीव तथा परमात्मा का संयोग तथा वियोग है। स्वामी तथा देवी दोनों एक दूसरे के कारण यश प्राप्त करते हैं। यहाँ हमें अवश्य कालीदास का यह श्लोक स्मरण आता है -

**''वागर्थाविव संप्रुक्तो, वागर्थः प्रतिपत्तये
जगतः पितरो वंदे पार्वती परमेश्वरो।''**

सम्पूर्ण शतक में एक से एक सुन्दर भाव देखकर पाठकों का मन आनंद से विभोर हो उठता है। सम्पूर्ण जगत् के माता-पिता होने के कारण कवि कहते हैं कि हे स्वामी! तुम दोनों के लिए कमल ही ''भवांड भांड'' है। ऊपर के लोक तुम्हारी अट्टालिकाएँ हैं, सूर्य दीप तथा चाँद खिलौना और सारे देवगण किंकर।

एक अन्य स्थान पर कवि की कल्पना है कि देवी, स्वामी को अपने ''दृगूप्रसून अर्थात् दृष्टि रूपी पुष्पों से ही पूजा'' कर रही है। कितनी कोमल भावना है। सच तो यह है कि कवि अपने वाक् प्रसूनों से भगवान की पूजा कर रहा है।

एक से एक सुन्दर कोमल भावनाओं के साथ भगवान की स्तुति, भक्ति, शृंगार और वन - विहार के वर्णनों से संपूर्ण काव्य भरा हुआ है। मानो नाना प्रकार के पुष्पों के सुगन्ध से चारों ओर का वातावरण खिल उठा हो।

(ख) नीति सीस शतकमुः यह लोकनीति, राजनीति के विवरण के साथ ''सीस'' छन्द में लिखित वेंकटेश्वर शतकमु संज्ञा से विख्यात ताल्लपाक पेदतिरुमलाचार्य की रचना है। यह अपने प्रकार का प्रथम शतक है। संक्षिप्त रूप से इसमें चर्चित विषय तथा उनकी विशेषता इस प्रकार है - राजनीति से सम्बन्धित पद्यों में - राजा का अर्थ, राजा बनने योग्य व्यक्ति कौन है, मंत्री कौन है, राजनीति क्या है आदि का विवरण है। सामाजिक नीति सम्बन्धी कविताओं में शान्ति पूर्वक जीवन बिताने की विधि क्या है, जीवन में अच्छाई क्या है, बुराई क्या है, उनके प्रभाव आदि की चर्चा है। भक्ति, आध्यात्मिक

और ज्ञान सम्बन्धी विचारों के साथ-साथ गुरु-शिष्य, योगी, सती जैसे व्यक्तियों के बारे में भी इसमें चर्चा है। शतक का आरम्भ कवि अत्यन्त भक्ति से भगवान विष्णु की स्तुति से करते हैं - ''वक्षःस्थल पर श्रीदेवी, गले में तुलसी की मालाएँ, पृष्ठ भाग पर पृथ्वी, चरणों में गंगा, नाभि से ब्रह्मा, मन में कामदेव, दोनों ओर सूर्य तथा चन्द्र, ध्वज पर गरुड़..... पेट में सारा जग,... इन सभी से विराजमान हैं स्वामी। तुम्हारे प्रति मैं यह शतक प्रस्तुत कर रहा हूँ।'' प्रत्येक कविता का अन्त ''विमल रविकोटि संकाश-वेंकटेश'' के मकुट से हुआ है।

मनुष्य चाहे कितना भी महान् क्यों न हो छोटा सा व्यसन इसे एकदम पतित बना सकता है। अतः भक्त को सप्त व्यसनों से विरत रहने की परम आवश्यकता है। इस उक्ति को उदाहरणों से प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं - ''पर नारी मोहवश सिंहबल और रावण, राज्य लोभ से कौरव, कटु वचनों के कारण शिशुपाल, दूपूत के कारण युधिष्ठिर, इसी प्रकार मृगया की आसक्ति से पांडु राजा आदि महान् व्यक्तियों का मात्र छोटे व्यसन के कारण पतन हो गया है।'' अतः उत्तम जीवन चाहने वाले व्यक्ति ऐहिक भोगों के प्रति वासना पर नियंत्रण कर, अरिषड् वर्गों से मुक्त रहना आवश्यक है।

कवि ने मांधाता, दुर्योधन, जीमूतवाहन, नहुष, सूर्यवंशी चक्रवर्ती आदि के दृष्टान्तों द्वारा यह संदेश दिया है कि मरण के पश्चात् एक तिनका भी हाथ न आयेगा। इसलिए इन क्षणिक ऐहिक भोगों के प्रति हमें विमुख रहना चाहिए।

संसार में देखा जाता है कि एक व्यक्ति धन संचित करता है तो उसका उपयोग दूसरे करते हैं। आखिर ब्रह्मा का भी यह शरीर

अशाश्वत ही है तथा यौवन ही वर्षाकालीन धारा प्रवाह की भांति केवल कुछ ही दिनों का अतिथि है। ये सभी सांसारिक लंपट केवल भ्रम हैं। जो व्यक्ति भगवान का स्मरण करता है उसे शाश्वत सत्ता मिल जाती है।

व्यक्ति के लिए प्राणों से आत्म सम्मान और यश रूपी धन महान् हैं। पृथ्वी पर सम्पत्ति से उदारता महान् गुण है... अतः इन गुणों से युक्त वीर केवल हजार में से एक ही होते हैं।

युवतियों के मध्य मन का विचलित होना, ''कनक'' को देखते ही आशा का उत्पन्न होना, छुरी हाथ में आते ही शूरता आना, नीच व्यक्ति से स्नेह के कारण निंदा को सहना, राजाओं के साथ परिहास से प्राणों का संकट में पड़ना, युवती के साथ वार्तालाप से धोखा खाना आदि-आदि सहज परिणाम हैं। अतः इनसे सावधान रहना अत्यन्त आवश्यक है।

राजा के जीवन का प्रत्येक दिन एक नियम से बिताना अत्यन्त आवश्यक है-जैसे स्नान, जप, दैवपूजा, ब्राह्मणों की सेवा, पुराण गोष्ठी, दान, स्वजन, गज तथा अश्वों की रक्षा, मंत्री तथा पुरोहितों से उचित परामर्श, कोशागार की जांच, भोजन, संगीत तथा साहित्य का आनंद, गुप्तचरों से वार्तालाप और थोड़ी सी निद्रा। राजनीति के बारे में लिखते हुए कवि कहते हैं कि राजा को बाहरी तथा अंदर के शत्रुओं का ज्ञान होना चाहिए। अपने हितैषियों की सलाह लेना, दुष्टों को दूर रखना, अपने शौर्य तथा पराक्रम के आधार पर राज्य करना चाहिए। इनके लिए समर्थ राजा ही नहीं समर्थ मंत्री की भी आवश्यकता होती है। अतः उत्तम मंत्री के भी लक्षण कवि ने इस प्रकार बताए हैं

- ''राजा को बार-बार सही सलाह देने में मंत्री को कभी भी झिझकना नहीं चाहिए। राजा कुपित होने पर भी या अन्य किसी प्रकार से असंतुष्ट होने पर भी मंत्री को राजा का हित सदैव ध्यान में रखना चाहिए।''

सामाजिक नीति के सम्बन्ध में कवि का कहना है - ''सत् गुण सम्पन्न व्यक्ति अपने लिए, अपने परिवार के लिए तथा अपने देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके इसके लिए कुछ विशेष गुणों की आवश्यकता होती है। इन सभी की विस्तृत चर्चा की गयी है। इनके साथ-साथ शरणागति, भगवद् भक्ति, गुरु-शिष्य, धर्म आदि की चर्चा है। ''कवि ने अपने अन्तिम पद्य में भगवान को विभिन्न नामों से सम्बोधित करते हुए अपने शतक को भक्तिपूर्वक भगवान् को समर्पित कर देने की बात का उल्लेख किया है।''

(ग) शृंगार वृत्त पद्य शतकः

103 छन्दों की यह शृंगारिक रचना पेदतिरुमलाचार्य की है। छन्द के अनुरूप ''वेंकटेश्वर'' मकुट (टेक) के साथ रचना चलती है। नायक दक्षिण है। ''चूंकि वेंकटेश्वर जगत् के नायक हैं। अतः वे अपने से प्रेम करने वाले सभी जीवों को संयोग की अनुभूति का अनुग्रह कराते हैं। किन्तु उससे धन्य प्रत्येक नायिका गर्व के कारण अन्यों से अधिक, स्वयं ही नायक का प्रेम पाना चाहती है। वे ''स्वाधीनपतिकाओं'' की भांति अपने नायक को बांध लेना चाहती हैं। नायक ''दक्षिण'' है इस कारण वे सत्यभामा जैसी ''खंडिता'' बन जाती हैं। उस अवस्था की ''प्रौढ़'' तथा ''धीर'' नायिकाएँ नायक से व्यंग्योक्तियाँ कर अपना मन हलका कर लेती हैं। इस प्रकार उन्हें

रुठाना फिर मनाना-ये सारी उस नायक की लीलाएँ हैं जिनसे उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है।'' संक्षेप में यही इसका वर्ण्य विषय है।

इसकी नायिका स्वयं कवि ही है। अतः नायक के दक्षिण गुणों के कारण कवि अत्यन्त वेदना का अनुभव करता है। भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं में नायिका के विभिन्न मनोभावों का सुन्दर वर्णन है। प्रेमिका का रुठना, प्रिय को मनाना तथा अन्त में मिलन यही वर्ण्य विषय है। देखिए-नायिका कितनी चतुराई से कह रही है - ''इस प्रकार तुम मुझे जब तरह-तरह से मना रहे हो तो मैं क्यों हठ करूँ?'' क्या न कहूँ कि चलो अब बहस क्यों तुम्हारे चरण दे दो, मैं वंदना करती हूँ'' इस शतक में उत्पलमाला, शार्दूल, चंपकमाला, मत्तेभ आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। यह माधुर्य भक्ति शतक है। शब्दालंकारों का प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है।

(घ) श्रीकृष्ण शतकः ''कृष्णा'' मकुट (टेक) से अन्त होने वाले इस शतक की भी रचना पेदतिरुमलाचार्य ने की है। तेलुगु भाषा में दो प्रकार से ''र'' अक्षर का प्रयोग होता है। एक साधु ''र'' तथा दूसरा कठिन ''र''। अतः कवि ने इस ग्रंथ की भाषा में इसी ''र'' के प्रयोग की विधियों का निर्देश किया है। इस शतक का उपनाम भी ''रेफ रकार निर्णय'' है। कृति के आरम्भ में कवि ने कहा है - ''कवित्रय आदि प्राचीन कवियों के ग्रंथों के आधार पर ''रेफरकार'' का निर्णय कर लक्षण ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत पद्य...'' आरम्भ में ही इसे श्री वेंकटेश्वर को समर्पित किया गया है। 55 वें पद्य तक साधु ''र'' के प्रयोग के सम्बन्ध में लक्षणों का विवरण है। पुनः एक संख्या से आरंभ कर कठिन ''र'' प्रयोग से सम्बन्धित लक्षणों का विवरण

53 पद्यों में किया गया है। अतः इस ग्रंथ को हम शतक के माध्यम से लिखा गया एक लक्षण ग्रंथ मान सकते हैं।

इस ग्रंथ की रचना कवियों के प्रयोगों के अनुसार स्वर तथा व्यंजन के क्रम में की गयी है। अतः इस प्रकार की यह प्रथम तथा आज तक प्रामाणिक रचना मानी जाती है।

(च) शृंगार अमरु शतकः संस्कृत से अनूदित यह रचना ताल्लपाक तिरुवेंगलप्पा की है। ये अन्नमाचार्य के प्रपौत्र थे। इसका उल्लेख स्वयं कवि ने ही किया है। यह काव्य श्रीवेंकटेश्वर को ही समर्पित है। इस काव्य की विशेषता यह है कि कवि संस्कृत श्लोकों का अनुवाद मात्र प्रस्तुत कर, संतुष्ट नहीं हुआ है। लघु विवरण भी दिया है। मूल की अपेक्षा इसे बहुत कुछ व्यवस्थित रूप से भी सजाया गया है। जैसा कि नामकरण से ही व्यक्त होता है, इसमें मुख्य शृंगार रस है। विशेष कर नायिका के भिन्न प्रकारों (अष्ट विध) का वर्णन है। स्वकीया नायिका की ही प्रधानता है। साथ ही शठ, दक्षिण, अनुकूल नायकों का तथा सखी, दूती आदि का भी निरूपण है। संयोग तथा विप्रलम्भ-शृंगार रस के दोनों प्रधान अंगों का विवरण है।

आलोच्य युग में शतकों की रचना वैष्णव भक्तों ने बहुत अधिक मात्रा में की। इनमें भी ताल्लपाक के कवि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दंडकमुलुः

प्रस्तावनाः ''पारिभाषिक रूप से दंडक गद्य और पद्य के बीच का ही काव्य रूप है। गद्य के ढाँचे में लय का समावेश करके गद्य को गेय बना दिया जाता है। वाक्यों का विधान लय की गतिविधि पर

आश्रित रहता है। विशेषणों के बाहुल्य से इनमें गति उत्पन्न की जाती है।...'' स्तुतिपरक साहित्य की समस्त विशेषताओं से युक्त दंडक काव्य रूप भक्तों के लिए एक सशक्त वाहक बन गया।''

इस काव्य रूप के बीज हमें संस्कृत साहित्य के कविकुल गुरु कालिदास कृत ''श्यामला दंडक'' आदि में मिलते हैं। दंडकों में भक्ति की प्रधानता तथा देवता की स्तुति होती है। एक ही अक्षर पुनः पुनः प्रयुक्त होने के कारण एक प्रकार का सौंदर्य आ जाता है तथा ये श्रवणानंद देते हैं।

प्रायः इन्हीं के आधार पर तेलुगु में भी सहस्रों की रचना हुई है। यह आत्माश्रयी कविता के अन्तर्गत आती है। ये दंडक स्वतंत्र रचनाएँ भी हो सकती हैं या काव्य के एक अंग भी हो सकते हैं। तेलुगु के श्रीमद्भागवत में पोतना के दंडक बहुत प्रसिद्ध हैं। ''दंडकों में, ''त'' गण का प्रयोग कवि इसलिए अधिक करते हैं कि श्रवण के लिए वह सुखदायी है। यह समुद्र की गंभीरता के साथ-साथ तानपुरे की मंद ध्वनि की तरह भाव को लयबद्ध बनाती है। यह मन को एकोन्मुखी बनाने में समर्थ हैं।

यद्यपि तेलुगु भाषा के कवियों ने संस्कृत से इस शैली को अपनाया है फिर भी इसे एक स्वतंत्र रूप दिया है। उन्होंने इसे संस्कृत के स्तुतिपरक दंडकों तक ही सीमित न रख कर इतिवृत्तात्मक दंडकों की भी रचना आरम्भ की है। ताल्लपाक के कवियों ने इस शैली को भी अपनाया है।

ताल्लपाक के कवियों का दंडक साहित्यः

(क) शृंगार दंडकः अन्नमाचार्य के पुत्र पेदतिरुमलाचार्य जी की यह लघुकृति है। इसमें पद्मावती तथा श्रीनिवास के शृंगार का

वर्णन है। अन्य काव्यों की भांति इसे भी कवि ने श्री वेंकटेश्वर को ही समर्पित किया है, जिसका उल्लेख कवि ने अन्तिम कविता में किया है।

इसकी कथा शृंगार मंजरी (अन्नमाचार्य) तथा चक्रवाल मंजरी (पे.ति.चा.) से मिलती जुलती है। कवि ने नायक तथा नायिका द्वारा संदेश पतंगों के माध्यम से भिजवाकर एक नई कल्पना की है। एक दूसरे के प्रथम दर्शन के पश्चात् दोनों एक प्रकार की तन्मयावस्था में डूब जाते हैं। तब नायिका ''अपनी विनती पतंग के द्वारा सुन्दर रूप से कस्तूरी के परिमल के सूत्र से बाँधकर कृष्ण के महल में भेजती है। नायक उसे पाकर उत्तर में स्वयं भी संदेश भेजता है।'' यद्यपि इसकी कथा प्राचीन कृतियों से मिलती है, फिर भी ऊपर कथित वर्णनों के कारण यह रचना अत्यन्त नवीन ही लगती है, जो कवि की अपनी विशेषता है।

(ख) अष्ट भाषा दंडकः इसके कवि चिनतिरुमलाचार्य हैं। इस दंडक में जिन आठ भाषाओं का प्रयोग हुआ है, वे इस प्रकार हैं - 1. संस्कृत 2. प्राकृत 3. शौरसेनी 4. मागधी 5. पैशाची 6. प्राची 7. अवंती तथा 8. सार्वदेशी (नागरी) संस्कृत तथा तेलुगु भाषाओं के भी प्रकांड पण्डित होने के कारण कवि को ''अष्ट भाषा चक्रवर्ती'' की उपाधि प्राप्त हुई। इन्हीं कारणों से ताल्लपाक के कवि अपने सम सामयिक पंडित समाज में विशेष आदरणीय थे।

हो सकता है कि कवि का उद्देश्य विभिन्न भाषाओं के माध्यम से उन भाषा-भाषियों तक श्री वेंकटेश्वर की महानता को पहुँचाना रहा हो, क्योंकि यह भी श्री वेंकटेश्वर की स्तुति परक दंडक है।

संस्कृतः श्रीवेंकटाधीश जीमूत नीलाजन ग्राव बृंद प्रभाभासमानांग श्रृंगार रूपोल्लासत्कोटि कंदर्प लावण्य वारान्निधे...

प्राकृतः देव्वभो इंदिराणाह कंदुट्ट नीलग्ग वारंगपासिव्वारा वुहामेड संतान सप्पुप्प संतान साग्गध संसेव्व...

शौरसेनीः सूरग्गतुं सूरसेण सेवेन पक्खी
ससेनादि दासावली से व्यमाणो...

मागधीः नालायणे मागधाला वंश शोषण
ग्गीश मग्गोलु कं शाशि शंशाल
मेहाणि तुम्म हा शेश शेम्मि...

पैशाची (अपभ्रंश) अच्छीनि जे सो पिसा सेससंसेव्व
गोलीसभूसाय माणँधि जाता पगा नीरसालप्प हा।

प्राचीः देनाह सच्चूलि काकिन्न तानप्प वाहोलु
मातंक वालोद्दुता उप्पला सेस मीलोह....

अवंतीः वे हलू सिरी गंतु नाना अबम्भंसरा हित्त
वाणी स सव्वाणि संधूय माणुप्पहा जुत्तु...

सार्व देशीः हे भट्टियों सव्वेद सेतकं हलेकुङ्गेतु
मंतत्तिये जुत्त गोवीजणंणि...

दंडक के अंत में कवि ने एक श्लोक की रचना की है जिसमें अपने साथ अपने पितामह और पिता का उल्लेख किया है तथा श्री वेंकटेश्वर को समर्पित करने का उल्लेख भी किया है। सभी प्रकार से यह लक्षण बद्ध रचना ताल्लपाक के कवियों की साहित्यिक माला में शोभायमान हीरा है।

रगड़ाः

प्रस्तावनाः ''रगड़'' छन्द तेलुगु तथा कन्नड़ में जन प्रिय रहा है। तेलुगु में इसका प्रयोग विशेष रूप से ''विचित्र काव्य'' के लिए किया गया है। प्राचीन काल से इसे स्तुति काव्य के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है। अनेक लोक गीतों में इसका प्रयोग हुआ है। ''प्रायः इसके गीत माधुर्य से प्रभावित होकर शिष्ट कवि भी इसे अपनाने लगे, यद्यपि यह देशी छन्द में प्राप्त होते हैं। इसी के आधार पर नये छन्दों का आविर्भाव भी हुआ है - जैसे ''क्रोंच पद''। इसके विशेष प्रचारक शैव तथा वैष्णव कवि थे। इसमें कई चरण होते हैं और इसे भगवान की स्तुति के लिए उपयोग किया जाता है। द्विपद तथा इसमें बहुत ज्यादा अन्तर है।

ताल्लपाक के कवियों का रगड़ साहित्यः

कवि पेदतिरुमलाचार्य ने इसमें सुदर्शन चक्र की महानता तथा विशेषता को गाया है। प्रत्येक चरण का अंत ''चक्रमु'' मकुट (टेक) से होता है। यह रचना इस प्रकार है -

''ओंकाराक्षर युक्तमु चक्रमु
सांक मध्य वलयांतर चक्रमु
सर्वफल प्रद सहजमु चक्रमु...''

इसमें कुल 108 पंक्तियाँ हैं जिनमें सुदर्शन चक्र की महानता, विशेषता, भक्त-रक्षा, दुष्ट संहार - आदि गुणों का भक्ति पूर्वक वर्णन है। सुदर्शन चक्र के वर्णन ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तनों में भी प्राप्त होते हैं।

उदाहरणः

प्रस्तावनाः मार्ग तथा देशी रचनाओं का सम्मिश्रित रूप ''उदाहरण'' शैली है। साहित्य के क्षेत्र में यह एक नवीनतम शैली थी। मार्ग के साथ-साथ देशी कविता को भी पहली बार प्रधानता दी गयी। इसकी विशेषताओं के बारे में इस प्रकार से कह सकते हैं कि यह वर्ण वृत्तों और मात्रिक छन्दों का एक मिश्रित काव्य रूप है। पद्य+गेय-पद्यगेय (उदाहरण) है। तेलुगु भाषा की आठों विभक्तियों का एक क्रम में उदाहरण देते हुए आगे बढ़ती है। प्रथमा विभक्ति से आरम्भ और संबोधन से अन्त होता है। इसमें 26 से अधिक छन्द होते हैं। ''सृष्टि में जीवात्मा तथा परमात्मा के मिलन की ही भांति भाषा में भी प्रकृति तथा प्रत्ययों का मेल अनिवार्य है। यह ''उदाहरण'' शैली संगीत तथा साहित्य के सम्मिश्रण का भी सुन्दर उदाहरण है।'' डॉ.एस.बी. जोगाराव का मंतव्य यह है कि भगवान् के माहात्म्य के उदाहरण देने वाली रचनाएँ होने के कारण इन्हें ''उदाहरण'' वाङ्मय कहा गया है। विषय की दृष्टि से यह स्तुति परक काव्य के अन्तर्गत आता है। लगता है कि यह ''उदाहरण'' शैली केवल तेलुगु भाषा की अपनी एक स्वतंत्र शैली है जो दक्षिण की अन्य भाषाओं में भी अप्राप्य है। उदाहरण शैली के भी प्रथम प्रचारक शैव कवि ही थे।

ताल्लपाक के कवियों का ''उदाहरण'' साहित्यः

श्री वेंकटेश्वरोदाहरणमुः श्री वेंकटेश्वर को समर्पित सात विभक्तियों पर आधारित यह रचना पेदतिरुमलाचार्य की है। सम्पूर्ण रचना में अध्यात्मक भावों का कवि ने प्रबोधन किया है। साथ ही इस शैली को एक व्यवस्थित रूप भी प्रदान किया है।

तेलुगु भाषा की विभक्तियाँ निम्न प्रकार हैं -

कारक (हिन्दी)	विभक्ति प्रत्यय (तेलुगु)	
1. कर्ता	ने - डु, मु, वु, लु -	प्रथमा विभक्ति
2. कर्म	को - निन्, नुन् लन, गूर्चि, गुरिंचि -	द्वितीय विभक्ति
3. करण	से - चतन्, चेन, तोडन, तोन् -	तृतीया विभक्ति
4. संप्रदान	को, केलिए, के, वास्ते-कोरकुन् कै -	चतुर्थी विभक्ति
5. अपादान	से - वलन, कंटे, पट्टि, नुंडि -	पंचमी विभक्ति
6. संबन्ध	का, के, की - किन् कुन, योक्क -	षष्ठ विभक्ति
7. अधिकरण	में, पर-लो, लोन् लोपल -	सप्तमी विभक्ति
8. संबोधन	हे, अरे, अजी, अहो -	ओरी, ओसी - संबोधन प्रथमा विभक्ति

कवि पेदतिरुमलाचार्य ने तेलुगु की इन विभक्तियों का प्रयोग करते हुए आध्यात्मिक भावों के साथ-साथ कही-कहीं श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भी किया है। उन्होंने सभी विभक्तियों का प्रयोग किया है। पंचमी विभक्ति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

''तेवगु लौरुगनि बंडि
विरिगि यौरुगग जोंडि
युद्धि मद्दुल व्राल्चि
गृद्दि येदुद्दुल गूल्यि
वात वूतन दोचि
चेत नेतुलु गूर्चि
युन्न वेन्ननिवन
नुन्नतोन्नतुवलन''

इन पंक्तियों में कृष्ण के द्वारा शकटासुर और पूतना का वध, यमलार्जुन उद्धार आदि का वर्णन है। अंतिम छन्द में कवि ने अपनी इस कृति का समर्पण वेंकटेश्वर को ही किया है।

स्थल महात्माः

प्रस्तावनाः भारत में जितने भी पुण्य क्षेत्र हैं, सभी के साथ कुछ न कुछ पौराणिक और ऐतिहासिक कथाएँ तथा महिमाएँ जुड़ी हुई पायी जाती हैं। उसी प्रकार तिरुपति क्षेत्र से सम्बन्धित कथाएँ अनेक हैं जिनके बीच वराह, वामन, ब्रह्मांड, पद्म, गरुड़ मार्कण्डेय पुराणों में मिलते हैं।

ताल्लपाक के कवियों के स्थल माहात्म्यः

श्री वेंकटाचल माहात्म्यः चिन्नन्ना ने अपने अन्नमाचार्य चरित्रा में उल्लेख किया है कि अन्नमय्या ने ''द्विपद छन्द में रामायण'' तथा देवभाषा (संस्कृत) में वेंकटाचल क्षेत्र महिमा की रचना की है। आज वह ग्रंथ उसी रूप में अप्राप्य है किन्तु विभिन्न नाम तथा रूपों से भिन्न - भिन्न कथाओं से कई ग्रंथ (तिरुपति क्षेत्र के स्थल पुराण सम्बन्धी) तेलुगु तथा संस्कृत में भी प्राप्त हैं। इस ओर विशेष शोध करना होगा कि अन्नमाचार्य की कृति कौन सी है। अन्नमाचार्य के कई संकीर्तन तिरुपति क्षेत्र की महिमा, पुष्करिणी, स्वामी की महिमा, मंदिर, सीढियाँ, कुरवनंबि (वैष्णव धर्म के भक्त) आदि के सम्बन्ध में प्राप्त हैं।

वचन संकीर्तनः

प्रस्तावनाः आत्माश्रयी रूप में संकीर्तन तथा वचन दोनों के सम्मिश्रित रूप में चलने वाली इन रचनाओं को वचन संकीर्तन कहा

जाता है। इनमें कवि कपट भाव छोड़ कर अत्यन्त दीनता से अपने मन के विभिन्न विकारों को प्रस्तुत करता है तथा परमपुरुष के प्रति अपनी अथाह श्रद्धा का परिचय देता है। इस प्रकार के वचन संकीर्तनों के पितामह ''कृष्णमाचार्य'' को माना जाता है जो तेरहवीं शताब्दी में हुए थे।

ताल्लपाक के कवियों के वचन संकीर्तनः

वैराग्य वचन मालिका गीतालुः पेदतिरुमलाचार्य ने सुन्दर शैली में इन वचन संकीर्तनों की रचना की है। इसमें कवि के द्वारा विभिन्न राग-रागनियों में अपनी भिन्न - भिन्न मनःस्थितयों का, दीनता का, राग-द्वेष आदि षट गुणों का वर्णन करते हुए भगवान के प्रति भक्ति भावना की अभिव्यक्ति की जाती है। इनका आरम्भ ही अत्यन्त मनोज्ञ है। ''हे प्रभु वेंकटेश्वर! मेरा देह आपका नित्य निवास है। मेरे ज्ञान तथा विज्ञान, मेरे उच्छ्वास - निश्वास आपके दोनों ओर लगे व्यंजन सदृश हैं और आपके उभय पार्श्व के दीपक हैं। मेरे मन का राग आपके लिए वस्त्र है। नमस्कार करने वाले मेरे दोनों हाथ ही ''मकर तोरण'' हैं। मेरे मन का राग आपके लिए वस्त्र है। नमस्कार करने वाले मेरे दोनों हाथ ही ''मकर तोरण'' हैं। मेरी भक्ति ही आपका सिंहासन है।... मेरे पुण्य ही आपके नैवैद्य... मेरा सात्विक गुण आपके लिए सुगंध धूप है। आप देवाधिदेव हैं तथा मैं आपका पुजारी हूँ। सदा ऐसे ही नित्योत्सवों को मुझसे पाने की कृपा कीजिए''।

एक अन्य स्थान पर कहते हैं ''क्षीर सागर स्वामी। कमल जिस प्रकार से सूर्य की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार मेरा मन कमल भी आपके लिए राह देख रहा है। कुमुदों की भांति मेरे चक्षु भी आपके

मुख चन्द्र की चाह में हैं।.... मेघागमन पर जैसे मयूर नाचता है आपके मेघ वर्ण वाले दिव्य शरीर का स्मरण कर मेरा मन-मयूर नाचता है। स्वाति की बूँदों के लिए सूक्तियाँ जिस प्रकार खुली रहती हैं, उसी तरह आपके श्रीपाद तीर्थ के लिए मेरी मुख सूक्ति विकसित है। गान माधुरी से साँप जिस तरह फण फैला कर नाचता है उसी तरह मेरे कान आपकी कथाओं से पुलकित हो रहे हैं। आप परात्पर हैं। मैंने प्रकृति सम्बन्धित इन अंगों को ग्रहण किया है। उस प्रकृति के चैतन्य आप हैं। इसी नाते इन दोनों के बीच अनुराग है। जैसे आँख न जानने से भी हृदय पहचान लेता है। मैं आपको जानने में असमर्थ हूँ। हे स्वामी! मैं केवल अपनी आशा को ही आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।''

कवि कहते हैं - ''स्वामी तुम्हें केवल भक्ति मात्र से ही प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे स्थान पर ''केवल दास्य की चाह'' तथा ''दास दासों की महानता'' का कीर्तन करते हैं। श्री प्रभाकर शास्त्री जी कहते हैं कि इस वच संकीर्तनों में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के कई उदाहरण प्राप्त होते हैं। कवि अपनी इस काव्य कन्या के लिए श्री वेंकटेश्वर को ही उचित वर मान कर उन्हीं को इस कन्या को समर्पण करते हैं।

लक्षण ग्रंथः

प्रस्तावनाः ताल्लपाक के कवियों की विशेषता यह है कि उन्होंने कई शैलियों में रचना करने के साथ-साथ तत्सम्बन्धी लक्षण ग्रंथों की भी रचना की। इस प्रकार वे लक्षण तथा लक्ष्य के समन्वयकारी थे।

संगीर्तन लक्षणः पद कविता पितामह अन्नमय्या को 32 हजार संकीर्तन लिखने की अद्भुत क्षमता ही नहीं थी वरन् संस्कृत में संकीर्तन लक्षण नामक ग्रंथ लिखने की भी शक्ति थी। किन्तु आज वह अप्राप्य है। उनके पुत्र पेदतिरुमालाचार्य ने इस ग्रंथ की व्याख्या संस्कृत में लिखी थी वह भी अप्राप्त है। आज केवल अन्नमय्या के चिनतिरुमलय्या की ''संकीर्तन लक्षण'' नामक तेलुगु व्याख्या ही उपलब्ध है, जिनके आधार पर ही ऊपर कथित विवरण हमें प्राप्त होते हैं। सामान्य पाठक तक इन संकीर्तनों के लक्षणों को पहुँचाने के लिए चिनतिरुमलाचार्य ने अत्यन्त सुलभ शैली को अपनाया है। काव्य के आरम्भ में अपने पितामह तथा पिता की प्रशंसा करते हुए संकीर्तनों को परम्परा, संकीर्तनों के लक्षण, उनके भेद, भाषा-नियम, संकीर्तनों की शाखाएँ आदि का विवरण देते हुए अन्त में कवि ने कुकवि की निन्दा भी की है।

व्याख्याएँः

प्रस्तावनाः प्राचीन परम्परा के अनुसार ताल्लपाक के कवियों ने संस्कृत ग्रंथों की व्याख्याएँ तथा विवरण भी अपने जीवन में दिये। जहाँ तक उनकी व्याख्याएँ उपलब्ध हैं - उन्हीं का एक परिचय प्रस्तुत है -

ताल्लपाक के कवियों की व्याख्याएँः

1. पेदतिरुमलाचार्य द्वारा रची गयी संकीर्तन लक्षण की व्याख्या आज तक अप्राप्य है। उसके बारे में केवल उनके पुत्र चिनतिरुमलाचार्य के तेलुगु लक्षण व्याख्या से ही जान सकते हैं।

2. पेदतिरुमलाचार्य ने भगवद् गीता का तेलुगु में अनुवाद प्रस्तुत किया है। यह मूल गीता का सार संग्रह के रूप में प्रस्तुत तेलुगु गद्य में है। ''आन्ध्र वेदान्त'' तथा ''भगवद् गीता टीका'' उसके उपनाम हैं। इसे ही भगवद्गीता का तेलुगु में प्रथम भावानुवाद माना गया है।

ग्रन्थ के आरम्भ में गीता पठन के आरंभिक ध्यान श्लोक तथा अन्त में गीता पारायण महिमा संबंधी श्लोकों का उल्लेख है। गीता के श्लोकों को लेकर कवि ने व्यावहारिक तेलुगु में व्याख्या प्रस्तुत की है। इसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के लक्षणों को रामानुज के भाष्य में दिए हुए क्रमानुसार प्रस्तुत करना ही कवि ने अपना लक्ष्य माना है। इसलिए इसमें मौलिक भाव, आलोचना, चर्चा आदि नहीं है। प्रत्येक श्लोक का सीधा अर्थ, साधारण भाषा में, संक्षिप्त रूप में कहा गया है।

(1) गुरुबाल प्रबोधिकाः

यह तिरुवेंगलप्पा से की गयी संस्कृत अमरकोष की विस्तृत तेलुगु व्याख्या है। आज भी तेलुगु प्रदेश में अमरकोष का प्रसिद्ध व्याख्या ग्रन्थ यही है। इसे ''नामलिंगानुशासन'' भी कहा जाता है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि अमरकोष के मूल सूत्रों के साथ-साथ उनकी विभिन्न टीकाओं को भी सम्पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए व्याख्या की गयी है।

(2) सुधानिधिः

इसकी रचना भी तिरुवेंगलप्पा ने ही की है। यह मम्मट की संस्कृत रचना ''काव्य प्रकाशिका'' की संस्कृत व्याख्या है। किन्तु

आज यह पूर्ण रूप से अलभ्य है। मद्रास के प्राच्य लिखित भांडागार में नागरी लिपिबद्ध ''काव्य प्रकाश व्याख्या'' मूल भाग कुछ अंशों में उपलब्ध है। इस अंश को श्री वेटूरि आनंद मूर्ती जी ने अपने ग्रन्थ में प्रकाशित किया है। 143 कारिकाएँ तथा ''दस उल्लासों'' में हैं। केवल मंगलाचरण ही अब प्राप्त है। इसी के आधार पर अनुमान लगा सकते हैं कि कवि संस्कृत, साहित्य तथा अलंकार सम्प्रदायों के विद्वान्, व्याकरण, तर्क और मीमांसा शास्त्रों के पंडित थे।

ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं के इस सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् हमें अत्यन्त आश्चर्य तथा प्रसन्नता भी होती है कि इन कवियों ने तेलुगु साहित्य की किसी भी शैली को अछूता नहीं छोड़ा। उनका साहित्य जितना विस्तृत है, उतना ही गहरा भी है। नवीन प्रयोगों के साथ संगीत, साहित्य तथा धर्म ही नहीं वरन् नाट्य शास्त्र में भी उनकी रचनाएँ अनुपम हैं। इनमें एक ओर धार्मिक जोश और उत्तेजना है तो दूसरी ओर पांडित्यपूर्ण संस्कृत और देशी तेलुगु का माधुर्य पूर्ण सम्मिश्रण। तेलुगु साहित्य में वे सदा जगमगाते हुए तारे रहेंगे।

इस प्रकार से करीब-करीब डेढ़ सौ वर्षों तक ताल्लपाक के कवि तेलुगु सरस्वती के गले में साहित्यिक आभूषण तथा हार पहनाते रहे। ताल्लपाक के कवियों ने तेलुगु भाषा को राज भवनों के बाहर निकाल कर सामान्य जनता के अनुकूल बनाया था। (जिसे हम ''जानुतेनुगु'' कहते हैं) ''उस युग में उनके साहित्य के कारण जो स्फूर्ति तथा चेतना तेलुगु भाषा तथा साहित्य को प्राप्त हुई थी, वह अन्य किसी युग या कवियों के कारण प्राप्त नहीं हुई।'' उन्हें मालूम था कि धर्म के प्रचार

तथा प्रसार के लिए साहित्य ही मूलाधार है। अतः उन्होंने भाषा को साधन बनाकर नित्य नये प्रयोगों के साथ धर्म को प्रजा के सम्मुख रखा। इस प्रकार वैष्णव धर्म तथा साहित्य-दोनों की उन्नति में ताल्लपाक के कवि सहायक बन सके। ताल्लपाक के कवियों के साहित्य को एक विशाल मंदिर से तुलना कर सकते हैं।

''इनके साहित्यिक मंदिर का जड़ ''धर्म'' है। संस्कृत तथा तेलुगु भाषाएँ निर्माण के लिए शिलाएँ हैं। संकीर्तन आदि शैलियाँ उस मंदिर में जाने के लिए सोपान हैं। उसमें आराध्य देव साक्षात् श्री वेंकटेश्वर हैं। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष उसकी चहार दीवारी हैं। मधुर कविताएँ प्रांगण हैं। उत्तम भाव सम्पति उस मंदिर का ''श्री भंडार'' है। कवि स्वयं अर्चक गण हैं। भक्ति ही भगवान् का प्रसाद है। गान ही भगवान के लिए महान् भोग हैं तो साहित्य प्रेमी ही यात्री हैं। यही उनकी कविता का सम्पूर्ण स्वरूप है।''

* * *

अध्याय - 3

ताल्लपाक के कवियों की भक्ति साधना का स्थल - तिरुपति

ताल्लपाक के कवि - भक्ति साधना का स्थल तिरुपतिः

ताल्लपाक के कवियों का जन्म स्थान आंध्र प्रदेश के कड़पा जिले में स्थित ''राजम्पेट'' तालुका का ''ताल्लपाका'' नामक गाँव है। इस वंश के मूल पुरुष अन्नमाचार्य ने अपने जन्म स्थान से तिरुपति आकर वहीं विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में दीक्षा ली थी। तब से इन कवियों के वंशजों ने तिरुपति क्षेत्र को ही अपनी साधना का स्थल बनाया। साक्षात् विष्णु और लक्ष्मी के अवतार श्री वेंकटेश्वर तथा अलमेलमंगा की क्रीड़ा स्थली तिरुपति क्षेत्र को ही उन्होंने अपना तन, धन और मन के साथ-साथ संगीत और साहित्य सब कुछ अर्पित कर दिया। अतः यह क्षेत्र उनके संगीत - साहित्य तथा भक्ति के लिए प्रेरणा श्रोत बना।

''नल्लमलै'' नाम से विख्यात पूर्वी घाटियाँ (ईस्टर्न घाट) चित्र-विचित्र आकृतियों में कृष्णा नदी के निचले भाग में कर्नूल, कड़पा और चित्तूर जिलों में व्याप्त हैं। ये आकृतियाँ शेष नाग की शयन आकृति-सी मिलती हैं। अतः ये ''शेषाचल'' नाम से विख्यात हो गयी हैं। इसके पृच्छ भाग में ''श्रीशैलम्'' (ज्योतिर्लिंग) पृष्ठभाग में ''अहोबिलम्'' (नरसिंह) शीर्षस्थान में ''तिरुपति'' (वेंकटेश्वर) और मुख स्थान में ''श्रीकालहस्ती'' (शैव क्षेत्र) स्थित हैं। यह भारत की विशेषता और समन्वयता का द्योतक है। इसके समीप स्वर्णमुखी

नदी है। यह भी एक छोटे से सर्प की आकृति में ही दीखती है। मानो वे बड़ी पर्वत पंक्तियाँ शेषनाग हैं तो यह नदी उसके पुत्र ''वासुकी'' आकार की हैं - किन्तु विपरीत दिशा में। अतः ऊपर कथित क्षेत्रों का स्थान भी बदल जाता है। इन्हें देखने पर लगता है कि शिव-केशव में अभेद तत्व को मानो ये अपने सहस्रों जिह्वाओं से घोषित कर रहे हैं।

पौराणिक कथाः वाराह और भविष्योत्तर पुराणों के अनुसार तिरुपति क्षेत्र और वहाँ के मंदिर का निर्माण साक्षात् भगवान के द्वारा ही माना जाता है। उसके सम्बन्ध में पौराणिक गाथा निम्न प्रकार से है - एक बार मुनियों में इस प्रश्न का उदय हुआ था कि त्रिमूर्तियों में से श्रेष्ठ कौन है? इसका उत्तर ढूँढने के लिए, भृगु महर्षि को योग्य मान कर उन्हें ही भेजा गया। ब्रह्मा और शिव ने उन्हें देख कर भी अनदेखा कर दिया। मुनि वैकुण्ठ पधारे, जहाँ श्रीमन्नारायण योग निद्रा में होने के कारण उनका स्वागत न कर सके। कुपित मुनि ने साक्षात् हरि के वक्षस्थल पर अपने पैर से आघात किया। मुनि के इस कार्य का, हरि ने बुरा न माना बल्कि उनसे क्षमा की याचना करते हुए सेवाएँ कीं। उनके आदर-सत्कार से प्रसन्न होकर मुनि चले गये और हरि को ही श्रेष्ठ घोषित किया। किन्तु सदा हरि के वक्षस्थल पर निवास करने वाली लक्ष्मी को यह अपमान सह्य नहीं था। वे रूठ कर पृथ्वी पर आ गयीं। विरह में व्याकुल नारायण भी लक्ष्मी को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते इस पृथ्वी पर आ गये। तिरुपति के समीप घने जंगलों में, जो उस समय वाराह क्षेत्र था, एक वाल्मीक (बांबी) में रहने लगे। विष्णु की इस स्थिति को देख स्वयं ब्रह्मा और शिव गाय बन गये और उस प्रदेश के नरेश-चोलवंश के राजा की गायों के झुण्ड में रहने लगे।

प्रतिदिन चरने के बहाने जा कर विष्णु के वाल्मीक पर दूध डाल कर आ जाते थे। एक दिन यह दृश्य एक गोपालक ने देख लिया और उस वाल्मीक पर प्रहार किया। इससे विष्णु के सिर पर चोट पहुँची और रक्त बहने लगा। विषय की जानकारी पा कर राजा आया और क्षमा की याचना की। विष्णु ने इस पाप के परिहार के लिए यह आदेश दिया कि थोड़े दिन तक तुम प्रेत योनि में रहो और दूसरे जन्म में राजा ''तोंडमान'' बन कर अपनी पुत्री से मेरा विवाह सम्पन्न कराना। राजा ने अत्यन्त आनन्द के साथ हाँ कर दी। अब विष्णु श्रीनिवास के नाम से जाने जाने लगे और उनकी देख भाल वकुला नाम की एक वृद्धा करने लगीं। एक दिन मृगया खेलते समय श्रीनिवास का मिलन ''पद्मावती'' नाम की कन्या से हुआ। पद्मावती तोंडमान की ही कन्या थी। देवताओं के समक्ष अत्यन्त वैभव के साथ हरि और पद्मावती अथवा अलमेल मंगा (साक्षात् लक्ष्मी का ही अवतार) का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह के पश्चात् श्रीनिवास ने इसी तिरुमल पहाड़ को अपना निवास स्थान बनाया। तोंडमान राजा ने अत्यन्त वैभव के साथ मंदिर बनवाया तो ब्रह्मा ने स्वयं ''ब्रह्मोत्सव'' का आयोजन किया जो परम्परा आज तक चली आ रही है। यही है संक्षेप में तिरुमल क्षेत्र की पौराणिक कथा।

इस क्षेत्र का वैभव और महिमा प्राचीन काल से ही समृद्ध थीं और दिन-ब-दिन बढ़ने लगीं। आलवारों की रचना, ''प्रबन्धम्'' में श्रीमन्नारायण रूपी भगवान वेंकटेश्वर के दिव्य स्वरूप, शृंगार, महिमा आदि का वर्णन है। तत्पश्चात् अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में इस क्षेत्र और प्रदेश का गौरव गान किया है। जैसे ताल्लपाक के कवि तथा अन्य तेलुगु कवियों ने ही नहीं वरन्

पुरन्दरदास आदि कन्नड़ के कवि तथा तमिल आदि अन्य दक्षिण भाषा भाषियों ने भी अपने साहित्य को वेंकटेश्वर के दिव्य वर्णनों से समृद्ध किया।

एक समय में इस क्षेत्र के भी शैव क्षेत्र होने के दावे किये थे। प्रायः चोल राजाओं का शैव धर्मावलम्बी होना भी एक कारण था। किन्तु रामानुजाचार्य ने शास्त्रार्थ में सभी को हरा कर सप्रमाण, इसे वैष्णव क्षेत्र निरूपित किया। इससे संतुष्ट न हो कर उन्होंने भगवान की पूजा और अर्चना में एक व्यवस्था लायी। उन्होंने ही स्वामी के गले में लक्ष्मी की मूर्ति का हार, शुक्रवार पूजा, ऊर्ध्व पुंड्र, बृहस्पतिवार को फूलों से ही आभूषण पहनाना, द्रविड़ प्रबन्ध का पठन, वैखानस परंपरा में पूजा आदि सेवाओं का आयोजन किया। अभिषेक के लिए जल की व्यवस्था, फूलों की व्यवस्था भी हुई। पहले से ही यह वाराह क्षेत्र था। इस कारण से यहाँ वाराह स्वामी की ही प्रथम पूजा आरम्भ हुई। इन सबके साथ-साथ उन्होंने वहाँ के वैष्णव पुजारियों पर भी नियम लगाये ताकि ये सारे काम व्यवस्थित रूप से चलें। रामानुजाचार्य से भी पहले यामुनाचार्य और नाथमुनि ने भी स्वामी की पूजा पद्धति को ठीक करने का प्रयत्न किया था। वल्लभाचार्य जी ने भी अपने दक्षिण देश की यात्रा में तिरुपति क्षेत्र के दर्शन किये थे। माधवाचार्य और आदिवन शठगोपयति, वेदान्त देशिक आदि वैष्णवाचार्यों के भी तिरुपति से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। इस प्रकार से वैष्णव आचार्य पुरुषों के ही परिश्रम के कारण तिरुपति क्षेत्र का वैभव और प्रबन्ध दिन-ब-दिन बढ़ता गया।

वैष्णव आचार्यों के साथ-साथ तत्कालीन राजा-माहाराजाओं ने भी अत्यधिक रूप में दान-धर्म दे कर इस क्षेत्र को साक्षात् वैकुण्ठ बनाया। उनमें से विशेषकर विजयनगर के राजा-महाराजाओं के नाम उल्लेखनीय हैं। रामानुजाचार्य द्वारा आरम्भ की गयी पूजाओं को तथा अन्य पद्धतियों को अत्यन्त श्रद्धा के साथ इन्होंने भी चलाया। स्वयं श्रीकृष्णदेवराय ने सात बार तिरुपति क्षेत्र की यात्रा की। विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा वहाँ के मंदिर को सात बार स्वर्ण लेपन लगाया गया। नयी-नयी सेवाओं का आयोजन बढ़ने लगा। धर्मकीर्ति नामक बौद्धों के लिए भी यह यात्रा स्थल बना। लाला मखाराम ने भी यात्रा की और आज भी उनकी स्वयं की मूर्तियाँ मंदिर में हैं, जिस प्रकार कृष्ण देवराय तथा उनकी रानी की है। प्राकृतिक तौर पर भी यह एक अत्यन्त मनोरम स्थल है। सप्तगिरि के नाम से विख्यात सात ऊँचे-ऊँचे पर्वत, हरी-हरी घाटियाँ, रंग-बिरंगे फूलों के उद्यान, कदम-कदम पर देवी-देवता, आकाश गंगा, पाताल गंगा, पुष्करिणी आदि के साथ यहाँ का वातावरण अत्यन्त मनमोहक ही नहीं सुखद भी है। इतना ही नहीं, प्रायः एक सौ करोड़ वर्ष पुराना 'पत्थर का तोरण' (बन्दनवार) भी यहाँ है। इस प्रकार के बन्दनवार सारे संसार में केवल तीन ही हैं। (तिरुपति के अतिरिक्त अमरीका और इंगलौंड में हैं।)

तिरुमल तिरुपति क्षेत्र में अनेक मंदिर हैं। वेंकटाद्रि पर भगवान वेंकटेश्वर के मंदिर के अलावा तिरुचानूर में पद्मावती का मंदिर, वराह मंदिर, नरसिंह मंदिर, गोविन्दराज स्वामी का मंदिर, श्रीराम, श्रीकृष्ण के मंदिर, हनुमान मंदिर तथा रामानुज मंदिर आदि-आदि।

समरसता की भावना और कौतूहल उत्पन्न करने वाली बात यह है कि इस महान् वैष्णव क्षेत्र के चारों ओर शैव मंदिर हैं। वे हैं -

आग्नेय दिशा में - अगस्त्येश्वरालय
नैऋत्य दिशा में - आदिनेपल्ली का शिव मंदिर
वायव्य दिशा में - श्री सिद्धेश्वरालय
ईशान्य दिशा में - श्री कालहस्तीश्वरालय

तिरसठ नायनमारों (शैव भक्त) में कम से कम चार-पाँच भक्तों ने तिरुपति क्षेत्र की यात्रा की थी। उनमें से प्रमुख थे - अप्परर्, सुन्दरर्, माणिक्य-वाचकर, भक्त कन्नप्पा आदि।

ताल्लपाक के कवि भी इस पुण्यस्थली से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। यहाँ भगवान वेंकटेश्वर, देवी अलमेलमंगा, अन्य देवी-देवताओं के साथ-साथ तिरुपति क्षेत्र के कण-कण का भी वर्णन किया गया है। पहली बार जब अन्नमाचार्य जी ने तिरुपति के मंदिर के दर्शन किये तो उनके मुख से अनायास ही शतक का जन्म हुआ। उस मंदिर को देखने में भक्त के मन में जो उत्साह भक्ति और श्रद्धा आदि भाव एक साथ उठते हैं उनका सजीव चित्र इस संकीर्तन में है -

''अदिवो अल्लदिवो श्रीहरिवासमु
पदिवेल शेषुल पडगल मयमु।''

अर्थात् वही है हरि का निवास जो दस सहस्र फणियों से युक्त है। वह वेंकटाचल ब्रह्मा आदि के लिए प्रिय है और देवी-देवताओं तथा मुनियों का नित्य निवास है। यह सोने के शिखरों का मंदिर हम

सबके लिए मूलधन है। उन्होंने सातों पहाड़ों पर चढ़ते समय पूरे मार्ग का, वहाँ के देवी-देवताओं का सुन्दर वर्णन एक क्रम में किया है।

रामानुज का वर्णनः

उन्नतोन्नतुडु उडयवर्लु - येन्नननंतुडे उडयवर्लु

घनविष्णुः

''गतुलान्निखिलमैन कलियुग मंदुन-गति ईतडे चूपे घन गुरु दैवमु।''

पुष्करिणीः

1. **''देव देवुनिकि नी तेप्पल कोनेरम्मा**
   वेवेल मोक्कुलु लोक पावनि नीकम्मा।''
2. **''एंदुकु प्रियमोनीकु ई तेप्प तिरुनाल्लु''**

गोविन्दराज स्वामीः

''सिरुलसोम्मुलतोड शेषुनिपैबवलिंचि
सोरिहि दासुल गृप जूचुकोंटानु।''

इस प्रकार से भूलोक स्वर्ग के नाम से विख्यात तिरुपति और कलियुग के प्रभु वेंकटेश्वर के वर्णन में इन कवियों ने कभी भी थकान का अनुभव नहीं किया।

तिरुपति क्षेत्र सम्बन्धी अध्ययन से पता चलता है कि यहाँ से सम्बन्धित कई नामों का आरम्भ ''तिरु'' से होता है। उदाहरण के लिए -

तिरुपति, तिरुमल, तिरुमलनंबि, तिरुप्पावै, तिरुचानूर, तिरुवेंगडम्, तिरुमलाचार्य, तिरुवेंगलनाथ, तिरुमंगै आल्वार, तिरुवायमोडि, तिरुचूर्ण आदि। ''तिरु'' का अर्थ है श्री। अर्थात् लक्ष्मी। इसकी पौराणिक कथा से यह विदित होता है कि लक्ष्मी के विरह में, उन्हें नारायण यहाँ ढूँढ रहे थे। शायद वे कोन-कोन में, लता-निकुंजों में, पहाड़ियों में ''श्री'' - ''श्री'' पुकारते रहे होंगे। मानों वही लक्ष्मी के लिए नारायण की पुकार चारों ओर गूँज उठी होगी। शायद इसी कारण से यहाँ से सम्बन्धित कई नाम 'तिरु' अथवा श्री से आरम्भ होते हैं। वास्तव में लक्ष्मी और नारायण में तत्वतः अन्तर न होने के कारण ही वेंकटेश्वर का नाम ''श्रीनिवास'' ही पड़ गया। इसीलिए ताल्लपाक के कवियों ने अपनी अनेक रचनाओं में उस अभेद तत्व का ही वर्णन किया है। अलमेलमंगा ही वेंकटेश्वर हैं तथा वेंकटेश्वर ही अलमेलमंगा। दोनों एक दूसरे के बारे में ही सोचते हैं। अलमेलमंगा वेंकटेश्वर की वाणी है तो वेंकटेश्वर ही अलमेंलमंगा का हृदय है। लक्ष्मी सदा वेंकटेश्वर के हृदय पर ही अलंकृत रहती है। भगवान के स्नान के समय में भी उसे अलग नहीं किया जाता। भक्तगण 'गोविन्दा' नाम स्मरण करते हुए अपनी तिरुपति की यात्रा पूरी कर लेते हैं।

ताल्लपाक के कवियों के अलावा दासकूट के पुरन्दरदास, त्यागराज, श्यामशास्त्री आदि ने भी वेंकटेश्वर के प्रति भक्तिपूर्ण रचनाएँ की। वैष्णव आचार्य पुरुषों ने इन स्थानों को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। ब्रज क्षेत्र की कुछ प्रथाओं को देख कर लगता है कि वल्लभाचार्य जी ने स्वयं दक्षिणात्य होने के कारण और तिरुपति क्षेत्र

का पर्यटन करने के कारण यहाँ की प्रथाओं का वहाँ भी प्रचलन किया होगा। जैसे रंगनाथ मंदिर में, सभी दक्षिणात्य संप्रदाय के पुजारी हैं। उसी प्रकार से उत्तर भारत से आये हुए एक योगी ''हतीराम महंत'' जी ने तिरुपति क्षेत्र को अपना निवास स्थान बनाया था। आज भी उनके नाम पर मठ आदि हैं।

- समाप्त -

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.	श्रीनिवास मंगापुरमु मरियु मन आलयमुल चरित्र	गोपालकृष्ण, ति.ति.दे. तिरुपति	1980
2.	ताल्लपाक कवुल कृतुलु, विविध साहिती प्रक्रियलु (तेलुगु)	डॉ. वेटूरि आनंदमूर्ति, श्रीनिवास विजयनगर कालोनी, हैदराबाद	1974
3.	तिरुमल तिरुपति यात्रा दर्पणमु (स्थलपुराणम-तेलुगु)	वेंकटेश्वरा बुक डिपो, तिरुपति	1954
4.	अन्नमाचार्या और सूरदास का संस्कृतिक अध्ययन	डॉ. एम. संगमेशम, ति.ति.दे.	1983
5.	आंध्र द्विपद साहित्य चरित्र	टी. सुशीला, नई दिल्ली	1979
6.	ताल्लपाक साहित्यमु आध्याम श्रृंगार संकीर्तनमु	ति.ति.दे. प्रकाशन (विभिन्न संकलन)	1980, 81
7.	ताल्लपाक कवुल लघु कृतुलु	ति.ति.दे. प्रकाशन	1935
8.	तेलुगुलो पदकवितलु	पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु आंध्र सारस्वत परिषद, हैदराबाद	1973

* * *